राजस्थान उच्च न्यायालय
जयपुर बेंच

(1) डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 756/2022

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 9521/2013 में

रत्ना उर्फ रतन लाल पुत्र स्वर्गीय श्री नाथू मीना, उम्र लगभग 68 वर्ष, निवासी फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

----अपीलकर्ता

बनाम

1. राजस्थान राजस्व बोर्ड, अजमेर अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से

2. श्रीमती आशा देवी अग्रवाल पत्नी ओम प्रकाश अग्रवाल, उम्र लगभग 63 वर्ष, निवासी बस स्टैंड के पास, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)

3. रामगोपाल पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

4. गणपत (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से

4/1. इन्द्रमोहन पुत्र श्री गणपत, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

4/2. मुरली मनोहर पुत्र श्री गणपत, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

5. सत्यनारायण (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से।

5/1. हरिओम पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 55 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/2. राधा किशन पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/3. विष्णु पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 42 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

6. हनुमान पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

7. जगदीश (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से

7/1. नन्द किशोर पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

7/2. गिर्राज पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 41 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

8. श्याम सुंदर शर्मा

9. सुरेश शर्मा दोनों पुत्र नित्यानंद शर्मा, निवासी मदनगंज किशनगढ़, जिला अजमेर

10. राजस्थान राज्य, तहसीलदार, किशनगढ़ के माध्यम से।

11. किस्तुरी देवी, धन्ना लाल की विधवा,

12. धन्ना लाल के पुत्र सुनील कुमार,

13. विनोद पुत्र धन्ना लाल, सभी निवासी ग्राम फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

14. अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर।

15. जिला कलेक्टर, अजमेर।

----उत्तरदाता

संबंधित

(2) डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 781/2022
एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 11851/2013

रत्ना उर्फ रतन लाल पुत्र स्वर्गीय श्री नाथू मीना, उम्र लगभग 68 वर्ष, निवासी फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

----अपीलकर्ता

बनाम

1. राजस्थान राजस्व बोर्ड, अजमेर अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से

2. श्रीमती आशा देवी अग्रवाल पत्नी ओम प्रकाश अग्रवाल, उम्र लगभग 63 वर्ष, निवासी बस स्टैंड के पास, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

अजमेर (राजस्थान)
3. रामगोपाल पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
4. गणपत (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से
4/1. इन्द्रमोहन पुत्र श्री गणपत, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
4/2. मुरली मनोहर पुत्र श्री गणपत, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
5. सत्यनारायण (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से।
5/1. हरिओम पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 55 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।
5/2. राधा किशन पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।
5/3. विष्णु पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 42 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
6. हनुमान पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
7. जगदीश (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से
7/1. नन्द किशोर पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।
7/2. गिर्राज पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 41 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।
8. श्याम सुंदर शर्मा
9. सुरेश शर्मा दोनों पुत्र नित्यानंद शर्मा, निवासी मदनगंज किशनगढ़, जिला अजमेर
10. राजस्थान राज्य, तहसीलदार, किशनगढ़ के माध्यम से।
11. किस्तुरी देवी, धन्ना लाल की विधवा,
12. धन्ना लाल के पुत्र सुनील कुमार,
13. विनोद पुत्र धन्ना लाल, सभी निवासी ग्राम फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
14. अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर।
15. जिला कलेक्टर, अजमेर।

----उत्तरदाता

(3) डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 785/2022
एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 11852/2013 में

रत्ना उर्फ रतन लाल पुत्र स्वर्गीय श्री नाथू मीना, उम्र लगभग 68 वर्ष, निवासी फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

----अपीलकर्ता

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

बनाम

1. राजस्थान राजस्व बोर्ड, अजमेर अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से
2. श्रीमती आशा देवी अग्रवाल पत्नी ओम प्रकाश अग्रवाल, उम्र लगभग 63 वर्ष, निवासी बस स्टैंड के पास, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
3. रामगोपाल पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
4. गणपत (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से

4/1. इन्द्रमोहन पुत्र श्री गणपत, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

4/2. मुरली मनोहर पुत्र श्री गणपत, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

5. सत्यनारायण (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से।

5/1. हरिओम पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 55 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/2. राधा किशन पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/3. विष्णु पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 42 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

6. हनुमान पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
7. जगदीश (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से

7/1. नन्द किशोर पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

7/2. गिर्राज पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 41 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

8. श्याम सुंदर शर्मा
9. सुरेश शर्मा दोनों पुत्र नित्यानंद शर्मा, निवासी मदनगंज किशनगढ़, जिला अजमेर
10. राजस्थान राज्य, तहसीलदार, किशनगढ़ के माध्यम से।
11. किस्तुरी देवी, धन्ना लाल की विधवा,
12. धन्ना लाल के पुत्र सुनील कुमार,
13. विनोद पुत्र धन्ना लाल, सभी निवासी ग्राम फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
14. अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर।
15. जिला कलेक्टर, अजमेर।

----उत्तरदाता

(4) डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 977/2022

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 11851/2013 में

1. किस्तुरी देवी, धन्ना लाल की विधवा,
2. धन्ना लाल के पुत्र सुनील कुमार,
3. विनोद पुत्र धन्ना लाल, सभी निवासी ग्राम फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

----अपीलकर्ता

बनाम

1. अजमेर स्थित राजस्थान राजस्व बोर्ड, अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से
2. श्रीमती आशा देवी अग्रवाल पत्नी ओम प्रकाश अग्रवाल, उम्र लगभग 63 वर्ष, निवासी बस स्टैंड के पास, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
3. रामगोपाल पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
4. गणपत (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से

4/1. इन्द्रमोहन पुत्र श्री गणपत, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

4/2. मुरली मनोहर पुत्र श्री गणपत, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

5. सत्यनारायण (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से।

5/1. हरिओम पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 55 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/2. राधा किशन पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/3. विष्णु पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 42 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

6. हनुमान पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
7. जगदीश (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से

7/1. नन्द किशोर पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

7/2. गिर्राज पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 41 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

8. श्याम सुंदर शर्मा
9. सुरेश शर्मा दोनों पुत्र नित्यानंद शर्मा, निवासी मदनगंज किशनगढ़, जिला अजमेर
10. राजस्थान राज्य, तहसीलदार, किशनगढ़ के माध्यम से।
11. रत्ना उर्फ रतन लाल पुत्र स्वर्गीय श्री नाथू मीना, उम्र लगभग 68 वर्ष, निवासी

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
12. अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर।
13. जिला कलेक्टर, अजमेर।

----उत्तरदाता

(5) डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 996/2022
एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 9521/2013 में

1. किस्तुरी देवी, धन्ना लाल की विधवा,
2. धन्ना लाल के पुत्र सुनील कुमार,
3. विनोद पुत्र धन्ना लाल, सभी निवासी ग्राम फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

----अपीलकर्ता

बनाम

1. अजमेर स्थित राजस्थान राजस्व बोर्ड, अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से
2. श्रीमती आशा देवी अग्रवाल पत्नी ओम प्रकाश अग्रवाल, उम्र लगभग 63 वर्ष, निवासी बस स्टैंड के पास, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
3. रामगोपाल पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
4. गणपत (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से

4/1. इन्द्रमोहन पुत्र श्री गणपत, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

4/2. मुरली मनोहर पुत्र श्री गणपत, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

5. सत्यनारायण (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से।

5/1. हरिओम पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 55 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/2. राधा किशन पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/3. विष्णु पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 42 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

6. हनुमान पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
7. जगदीश (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से

7/1. नन्द किशोर पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

7/2. गिर्राज पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 41 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास,

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।
8. श्याम सुंदर शर्मा
9. सुरेश शर्मा दोनों पुत्र नित्यानंद शर्मा, निवासी मदनगंज किशनगढ़, जिला अजमेर
10. राजस्थान राज्य, तहसीलदार, किशनगढ़ के माध्यम से।
11. रत्ना उर्फ रतन लाल पुत्र स्वर्गीय श्री नाथू मीना, उम्र लगभग 68 वर्ष, निवासी फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
12. अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर।
13. जिला कलेक्टर, अजमेर।

----उत्तरदाता

(6) डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 999/2022
एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 11852/2013 में

1. किस्तुरी देवी, धन्ना लाल की विधवा,
2. धन्ना लाल के पुत्र सुनील कुमार,
3. विनोद पुत्र धन्ना लाल, सभी निवासी ग्राम फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

----अपीलकर्ता

बनाम

1. अजमेर स्थित राजस्थान राजस्व बोर्ड, अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से
2. श्रीमती आशा देवी अग्रवाल पत्नी ओम प्रकाश अग्रवाल, उम्र लगभग 63 वर्ष, निवासी बस स्टैंड के पास, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
3. रामगोपाल पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज-किशनगढ़ तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर
4. गणपत (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से

4/1. इन्द्रमोहन पुत्र श्री गणपत, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर

4/2. मुरली मनोहर पुत्र श्री गणपत, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

5. सत्यनारायण (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से।

5/1. हरिओम पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 55 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/2. राधा किशन पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।

5/3. विष्णु पुत्र सत्य नारायण, उम्र लगभग 42 वर्ष, निवासी मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

6. हनुमान पुत्र भागीरथ, निवासी सब्जी मण्डी, मस्जिद के सामने, मदनगंज किशनगढ़, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
7. जगदीश (अब दिवंगत), कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से
7/1. नन्द किशोर पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी रवीन्द्र थिएटर के पास ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।
7/2. गिर्राज पुत्र जगदीश, उम्र लगभग 41 वर्ष, निवासी गणेश मंदिर के पास, कृष्णपुरी, मदनगंज, किशनगढ़, जिला अजमेर।
8. श्याम सुंदर शर्मा
9. सुरेश शर्मा दोनों पुत्र नित्यानंद शर्मा, निवासी मदनगंज किशनगढ़, जिला अजमेर
10. राजस्थान राज्य, तहसीलदार, किशनगढ़ के माध्यम से।
11. रत्ना उर्फ रतन लाल पुत्र स्वर्गीय श्री नाथू मीना, उम्र लगभग 68 वर्ष, निवासी फरासिया, तहसील किशनगढ़, जिला अजमेर।
12. अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर।
13. जिला कलेक्टर, अजमेर।

----उत्तरदाता

(7) डी.बी. विशेष अपील (रिट) संख्या 222/2023

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 19076/2022 में

हीरालाल पुत्र स्वर्गीय चन्द्राराम, निवासी ढाणी दुलापुरा, तन कांकरा, तहसील दांतारामगढ़, जिला सीकर राजस्थान।

----प्रतिवादी-याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता

बनाम

1. चित्रा सिंह पत्नी श्री विक्रमादित्य शेखावत, निवासी दांता हाउस, चांदपोल के बाहर, जयपुर, राजस्थान।

वादी-प्रतिवादी

2. हनुमान पुत्र स्वर्गीय दुलाराम पुत्र स्वर्गीय चंद्राराम,
3. चोखाराम पुत्र स्वर्गीय दुलाराम पुत्र स्वर्गीय चंद्राराम,
4. गोपाल पुत्र स्वर्गीय दुलाराम पुत्र स्वर्गीय चंद्रराम,
5. कुमारी पतासी पुत्री स्वर्गीय दुलाराम पुत्र स्वर्गीय चंद्राराम,
6. श्रीमती सुंदरी देवी पत्नी स्वर्गीय दुलाराम,
7. कृष्णराम पुत्र स्वर्गीय चन्द्राराम,
8. जोधाराम पुत्र स्वर्गीय चंद्राराम,
9. राखी पुत्री स्वर्गीय चंद्राराम,
10. मन्ना देवी पुत्री स्वर्गीय चंद्रराम,
11. देवली पत्नी बालूराम,
12. रामदेवराम पुत्र स्वर्गीय बालूराम,
13. जोगाराम पुत्र स्वर्गीय बालूराम,
14. केसर देवी पुत्री स्वर्गीय बालूराम

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

15. बिरदी देवी पुत्री स्वर्गीय बालूराम,
16. राजू देवी पुत्री स्वर्गीय बालूराम, सभी निवासी ढाणी दुलापुरा, तन कांकरा, तहसील दांतारामगढ़, जिला सीकर, राजस्थान।
17. राजस्थान राज्य, तहसीलदार दांतारामगढ़, जिला सीकर के माध्यम से

----प्रतिवादी-प्रतिवादी

(8) डी.बी. विशेष अपील (रिट) संख्या 410/2023

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 10140/2018 में

1. सीताराम पुत्र श्री गोपाल, उम्र लगभग 50 वर्ष, निवासी ग्राम बिलवा, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
2. रामरतन पुत्र श्री गोपाल, उम्र लगभग 55 वर्ष, निवासी ग्राम बिलवा, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
3. बाबूलाल गोपाल, पुत्र श्री गोपाल, उम्र लगभग 60 वर्ष, निवासी ग्राम बिलवा, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.

----अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता/प्रतिवादी

बनाम

1. भोंरीलाल पुत्र कजोड़, दत्तक पुत्र स्वर्गीय श्री घासी, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर
2. ग्यारशा पुत्र लक्ष्मीनारायण, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
3. रामेश्वर पुत्र लक्ष्मीनारायण, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
4. तहसीलदार, सांगानेर, जिला। जयपुर.
5. नारायण पुत्र भूरा, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
6. श्रीमती कमला पुत्री गोपाल, पत्नी राम सहाय, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
7. श्रीमती गुल्ली, पुत्री गोपाल, पत्नी बाबूलाल, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर
8. श्रीमती भूरी पुत्री गोपाल पत्नी बिरदीचंद, निवासी ग्राम महल, तहसील, सांगानेर, जिला। जयपुर.
9. गोपाल पुत्र लादूराम, निवासी ग्राम बिलवा, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
10. श्रीमती सोनी, सोनी उर्फ सोहनलाल की विधवा, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
11. रामसहाय, पुत्र श्री सोनी उर्फ सोहनलाल, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

12. रामकिशोर पुत्र श्री सोनी उर्फ सोहनलाल, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
13. सूरज पुत्र भूरा, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
14. रामसहाय, पुत्र भूरा, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, \ जिला। जयपुर.
15. शंकर लाल पुत्र भूरा, निवासी ग्राम नरसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
16. श्रीमती कैलाशी पुत्री श्री गोपाल, पत्नी रामजी लाल, निवासी ग्राम दुदाली, तहसील बस्सी, जिला. जयपुर.
17. श्रीमती सारा देवी, पत्नी श्री कन्हिया लाल, निवासी ग्राम मेहल टीलावाला, तहसील सांगानेर, जिला। जयपुर.
18. उप रजिस्ट्रार, तहसील सांगानेर, जिला जयपुर।

----प्रतिवादी/वादी

(9) डी.बी. विशेष अपील (रिट) संख्या 411/2023

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 15556/2016 में

रामेश्वर पुत्र श्री लक्ष्मी नारायण, उम्र लगभग 65 वर्ष, निवासी नृसिंहपुरा @ दादिया, तहसील-सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)

----अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता

बनाम

1. भोंरी लाल पुत्र श्री कजोड़, (दत्तक पुत्र) घासी, निवासी नृसिंहपुरा @ दादिया, तहसील-सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)
2. सीताराम, श्री गोपाल के पुत्र
3. रामरतन, श्री गोपाल के पुत्र
4. बाबू लाल पुत्र श्री गोपाल, सभी निवासी नृसिंहपुरा @ दादिया, तहसील-सांगानेर, जिला-जयपुर (राजस्थान) (स्वर्गीय श्रीमती मांगी के कानूनी उत्तराधिकारी)
5. कालू पुत्र श्री लक्ष्मीनारायण, निवासी नृसिंहपुरा@ दादिया, तहसील-सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)
6. ग्यारसा पुत्र श्री लक्ष्मीनारायण, निवासी नृसिंहपुरा @ दादिया, तहसील-सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)
7. उप रजिस्ट्रार, तहसील सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)
8. तहसीलदार, सांगानेर, जिला जयपुर (राज.)
9. नारायण पुत्र श्री भूरा, निवासी नृसिंहपुरा @ दादिया, तहसील- सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

10. श्रीमती कमला, श्री गोपाल की पुत्री, श्री राम सहाय की पत्नी
11. श्रीमती गुल्ली पुत्री श्री गोपाल, पत्नी श्री बाबू लाल, सभी निवासी नृसिंहपुरा @ दादिया, तहसील-सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)
12. श्रीमती भूरी पुत्री श्री गोपाल, पत्नी बिरदी चंद, निवासी गाँव महल, तहसील-सांगानेर, जिला-जयपुर।
13. गोपाल पुत्र श्री लादूराम, गाँव बीलवा, तहसील सांगानेर, जिला-जयपुर।
14. श्रीमती सोनी, विधवा सोनी @ सोहन लाल
15. राम राय, स्वर्गीय श्री सोनजी उर्फ सोहन लाल के पुत्र
16. रामकिशोर, स्वर्गीय श्री सोनजी उर्फ सोहन लाल के पुत्र
17. सूरज, पुत्र श्री भूरा
18. राम सहाय, पुत्र श्री भूरा
19. शंकर लाल पुत्र श्री भूरा, सभी निवासी नृसिंहपुरा @ दादिया, तहसील सांगानेर, जिला-जयपुर (राज.)
20. श्रीमती कैलाशी देवी पुत्री श्री गोपाल, पत्नी श्री रामजी लाल, निवासी दूधला, तहसील-बस्सी, जिला-जयपुर (राजस्थान)

----उत्तरदाता

अपीलकर्ता(ओं) के लिए : श्री राजेंद्र प्रसाद वरिष्ठ अधिवक्ता
सुश्री हर्षिता ठकराल द्वारा सहायता प्रदान
की गई वकील, सुश्री धृति लड्ढा एडवोकेट
एवं श्री अभिषेक पारीक एडवोकेट;
श्री एन.के. मालू वरिष्ठ अधिवक्ता एवं
एमिकस क्यूरी की सहायता श्रीमान ने की।
प्रत्यूष शर्मा एडवोकेट
श्री साकेत पारीक एडवोकेट
श्री आदित्य पारीक एडवोकेट
श्री महेश गुप्ता एडवोकेट
श्री मनोज कुमार भारद्वाज एडवोकेट।

उत्तरदाता(ओं) के लिए : श्री आर.के. अग्रवाल वरिष्ठ अधिवक्ता
सहायक श्री अधिराज मोदी अधिवक्ता
श्री आनंद शर्मा न्यायमित्र
श्री आशीष शर्मा अधिवक्ता।

माननीय मुख्य श्री. जस्टिस मनिंद्र मोहन श्रीवास्तव

माननीय श्रीमती. जस्टिस शुभा मेहता

आदेश

रिपोर्टयोग्य

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

25/10/2024

(माननीय मुख्य न्यायाधीश के अनुसार):

1. इन नौ अपीलों में, जिन्हें समान सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया है, इन अंतर-न्यायालय अपीलों की स्वीकार्यता पर सामान्य आधार पर आपत्ति उठाई गई है।

2. ये सभी अपीलें विद्वान एकल न्यायाधीशों द्वारा रिट याचिकाओं में पारित आदेशों से उत्पन्न हुई हैं। जहां तक डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 756/2022, 781/2021, 785/2022, 977/2022, 996/2022, 999/2022 और 222/2023 का संबंध है, वे विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष दायर रिट याचिका संख्या 9521/2013, 11851/2013, 11852/2013 और 19076/2022 में पारित आदेशों से उत्पन्न हुए हैं, जो राजस्थान भूमि राजस्व अधिनियम, 1956 (जिसे आगे '1956 का अधिनियम' कहा गया है) की धारा 84 के तहत प्रदान की गई पुनरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए राजस्व मंडल, अजमेर (जिसे आगे 'राजस्व मंडल' कहा गया है) द्वारा पारित आदेशों को चुनौती देते हैं।

जहां तक डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 410/2023 और 411/2023 का संबंध है, इन्हें रिट याचिका संख्या 15556/2016 और 10140/2018 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 17.04.2023 के सामान्य आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसमें राजस्व बोर्ड द्वारा अपील को खारिज करने के आदेश के साथ-साथ समीक्षा याचिका को खारिज करने के आदेश को चुनौती दी गई थी।

उत्तरदाताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ:

3. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. अग्रवाल ने इन अंतर-न्यायालयीय अपीलों की स्वीकार्यता के संबंध में यह आपत्ति उठाई कि विभिन्न अधिकारों की घोषणा हेतु वादों में विभिन्न राजस्व कार्यवाहियाँ राजस्व बोर्ड के समक्ष लाई गईं और वादों का निर्णय करते समय राजस्व न्यायालयों ने न्यायिक कार्य किया, जो सिविल न्यायालयों के न्यायिक कार्य के समान है, उन मामलों के संबंध में जहाँ सिविल न्यायालयों का क्षेत्राधिकार 1956 के अधिनियम और राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 (जिसे आगे '1955 का अधिनियम' कहा जाएगा) के प्रावधानों के अंतर्गत स्पष्ट रूप से वर्जित है। राजस्व न्यायालयों द्वारा आरंभिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए पारित किए गए आदेशों और आदेशों की अपील पहले राजस्व अपीलीय प्राधिकारियों के समक्ष की गई और अंततः राजस्व न्यायालयों के पदानुक्रम में राजस्व बोर्ड होने के

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

कारण अपील और/या पुनरीक्षण के सर्वोच्च न्यायालय में की गई। इसलिए, यह तर्क दिया जाता है कि राजस्व बोर्ड ने राजस्व मुकदमों से उत्पन्न मामलों की जांच करने के लिए अपीलीय और/या पुनरीक्षण प्राधिकारी के रूप में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया और इस प्रकार सभी कानूनी और व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए 'न्यायालय' के रूप में न्यायिक कार्य किया। इसलिए, राजस्व बोर्ड द्वारा सर्वोच्च राजस्व न्यायालय के रूप में ऐसी शक्तियों और कार्यों का प्रयोग करते हुए पारित आदेश रिट अधिकार क्षेत्र के अधीन नहीं हैं, बल्कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत केवल पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र के अधीन हैं। राजस्व बोर्ड, 1955 के अधिनियम की धारा 5(35) के तहत परिभाषित एक राजस्व न्यायालय होने के नाते और भले ही सख्ती से कहा जाए, यह सिविल न्यायालय नहीं है, लेकिन निश्चित रूप से 1955 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम के तहत प्रदान किए गए मामलों के संबंध में विशेष अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले न्यायालय के आभास रखता है क्योंकि सिविल न्यायालय का अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से वर्जित है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने धारा 5 उपधारा 34-ए, धारा 5 उपधारा (35); धारा 53 में निहित प्रावधानों का भी उल्लेख किया; 1955 के अधिनियम की धारा 88 से 92 और धारा 208 के तहत यह प्रस्तुत करने के लिए कि राजस्व न्यायालय, राजस्व मुकदमों के मामले में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय, न्यायिक न्यायालय के रूप में कार्य करते हैं और, इसलिए, **राधेश्याम एवं अन्य बनाम छबि नाथ एवं अन्य 1** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, राजस्व न्यायालयों द्वारा अंतत पारित किए गए आदेश और डिक्री भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट अधिकार क्षेत्र के अधीन नहीं हैं। अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ वकील ने **इथियोपियन एयरलाइंस बनाम गणेश नारायण साबू2; ट्रांस मेडिटेरेनियन एयरवेज बनाम यूनिवर्सल एक्सपोर्ट्स एवं अन्य 3; और प्यारेलाल बनाम शुभेंद्र पिलानिया (नाबालिग) प्राकृतिक संरक्षक (पिता) श्री प्रदीप कुमार पिलानिया एवं अन्य 4** के माध्यम से मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों पर भरोसा रखा।

<u>अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ:</u>

4. इसके विपरीत, अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजेंद्र प्रसाद ने तर्क दिया कि यद्यपि 1955 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम के अंतर्गत उपबंधित मामलों के संबंध में, सिविल न्यायालय का अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से वर्जित है और उन मामलों का निर्णय केवल राजस्व प्राधिकारी ही कर सकते हैं, या तो वैधानिक पदाधिकारियों के रूप में या राजस्व न्यायालयों के रूप में। यद्यपि राजस्व मुकदमों का निर्णय करते समय, राजस्व न्यायालय सिविल न्यायालयों के पदानुक्रम का हिस्सा नहीं होते हैं। इसमें निहित

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

प्रावधानों का हवाला देते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे 'सीपीसी' कहा जाएगा) की धारा 5 और धारा 8 तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 233 के संदर्भ में विद्वान वरिष्ठ वकील ने कहा कि राजस्व बोर्ड और सिविल न्यायालय के बीच हमेशा एक अंतर रखा गया है और वे एक समान नहीं हैं। जनरल क्लॉज एक्ट, 1897 में दिए गए "जिला न्यायाधीश" और "मुख्य नियंत्रक राजस्व[1]

प्राधिकरण" की परिभाषा का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त पीठासीन अधिकारियों को भी अलग से परिभाषित किया गया है कि उक्त पीठासीन अधिकारियों को भी अलग से परिभाषित किया गया है क्योंकि वे अदालतों के दो अलग-अलग और विशिष्ट पदानुक्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं और उन्हें "सिविल कोर्ट" के व्यापक वर्गीकरण के तहत कवर नहीं किया जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ वकील ने यह प्रस्तुत करने के लिए भारत के संविधान से संलग्न अनुसूची VII की सूची I, II और III के तहत विधायी प्रविष्टियों का भी उल्लेख किया कि राजस्व न्यायालय और सिविल न्यायालय कानून के प्रयोजनों के लिए पूरी तरह से अलग विधायी प्रविष्टियों के अंतर्गत आते हैं।

5. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तीन अध्यादेशों का हवाला देते हुए भारत के संविधान और राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के लागू होने से पहले राजस्थान राज्य में राजस्व न्यायालयों और सिविल न्यायालयों सहित विभिन्न न्यायालयों की ऐतिहासिक उत्पत्ति का भी पता लगाया; राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949; राजस्थान राजस्व बोर्ड अध्यादेश, 1949, राजस्थान सिविल न्यायालय अध्यादेश, 1950 और राजस्थान राजस्व न्यायालय (पदनाम) अध्यादेश, 1949। राजस्थान राजस्व न्यायालय (प्रक्रिया और अधिकारिता) अधिनियम, 1951 में निहित प्रावधानों के साथ-साथ 1955 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम में निहित प्रावधानों का भी संदर्भ दिया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने 1956 के अधिनियम से संलग्न प्रथम अनुसूची में वर्णित न्यायिक मामलों के संबंध में प्रावधानों का भी उल्लेख किया है, ताकि यह प्रस्तुत किया जा सके कि राजस्व बोर्ड सहित राजस्व न्यायालय केवल राजस्व मामलों के संबंध में सीमित अधिकारिता का प्रयोग करते हैं और इसलिए, वे सीमित अधिकारिता वाले न्यायालय हैं और उनके पास पूर्ण अधिकारिता नहीं है, जो सिविल न्यायालय सीपीसी की धारा 9 के तहत प्रयोग करते हैं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, चूंकि राजस्व

[1]1 (2015) 5 एससीसी 423
2 (2011) 8 एससीसी 539
3 (2011) 10 एससीसी 316
4 (2019) 3 एससीसी 692

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

न्यायालय सिविल न्यायालय नहीं हैं, इसलिए राजस्व न्यायालयों द्वारा पारित आदेश और डिक्री भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आते हैं और ऐसे मामलों में जहां उच्च न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत रिट याचिकाएं दायर की जाती हैं या जहां उच्च न्यायालय के उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार का आह्वान किया जाता है या जहां उच्च न्यायालय के उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए प्रार्थना की जाती है और जहां मामले के तथ्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत रिट याचिका दायर करने को उचित ठहराते हैं, वहां राजस्थान उच्च न्यायालय, 1952 के नियम 134 (जिसे आगे 'राजस्थान उच्च न्यायालय नियम' कहा जाएगा) के अंतर्गत प्रदान की गई अंतर-न्यायालय अपील स्वीकार्य होगी और उस पर कोई रोक नहीं होगी। ऐसे मामलों में, राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय लागू नहीं होगा। विद्वान वरिष्ठ वकील का तर्क है कि राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की बड़ी पीठ ने कानून घोषित किया कि सिविल अदालतों द्वारा पारित आदेश रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं। चूंकि राजस्व अदालतें सिविल अदालतें नहीं हैं, हालांकि उनमें सिविल अदालत के लक्षण हो सकते हैं, **राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा)** के मामले में दिया गया फैसला उन पर लागू नहीं होता और राजस्व बोर्ड द्वारा पारित डिक्री और आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार के अधीन हैं। विद्वान वरिष्ठ वकील ने **जोगेंद्रसिंहजी विजयसिंहजी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य 5; उमाजी केशाओ मेश्राम एवं अन्य बनाम राधिकाबाई, आनंदराव बानपुरकर की विधवा एवं अन्य 6; रमेश चंद्र सांकला इत्यादि बनाम विक्रम सीमेंट इत्यादि7** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों पर भी भरोसा किया। सैयद याकूब बनाम के.एस. राधाकृष्णन एवं अन्य[8]; तथा महेंद्र कुमार जैन बनाम अपीलीय किराया न्यायाधिकरण, अजमेर[9]; केशव देव बनाम राधेश्याम**-(1)[10]; [2]**बबीता बनाम निहालदेई[11]; पन्ना राम बनाम रामू राम[12]; रमेश चंद तिवारी एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य[13]; पंजाब नेशनल बैंक बनाम प्योरवेल एंड एसोसिएट्स लिमिटेड[14]; तथा करतार सिंह बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य[15] मामलों में इस न्यायालय के निर्णय।

---

[2]5 (2015) 9 एससीसी 1
6 1986 (सप्लीमेंट्री) एससीसी 401
7 एआईआर 2009 एससी 713
8 एआईआर 1964 एससी 477
9 एआईआर 2022 राजस्थान 7
10 1964 आरएलडब्ल्यू 1

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

6. चूंकि राजस्व बोर्ड द्वारा अपने पुनरीक्षण या अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए पारित आदेश के विरुद्ध इन अंतर-न्यायालयीय अपीलों की स्वीकार्यता के संबंध में मुद्दा उठाया गया था, इसलिए न्यायालय द्वारा किए गए अनुरोध पर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एन.के. मालू और विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद शर्मा ने भी न्यायमित्र के रूप में न्यायालय की सहायता की।[3]

<u>एमिकस क्यूरी द्वारा प्रस्तुतियाँ:</u>

7. विद्वान वरिष्ठ वकील और एमिकस क्यूरी श्री एन.के. मालू ने विस्तार से कहा कि स्थापित कानूनी स्थिति, जैसा कि अनेक निर्णयों में उल्लिखित है, वह यह है कि जहां न्यायालयों और न्यायाधिकरणों के आदेशों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत याचिकाएं दायर करके चुनौती दी जाती है और जहां मामले के तथ्य उत्प्रेषण रिट के आह्वान की मांग को उचित ठहराते हैं, वहां राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के तहत रिट अपील स्वीकार्य होगी। उनका आगे कहना है कि राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 को सीधे पढ़ने पर, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के प्रयोग में भी एकल पीठ द्वारा पारित आदेश के खिलाफ कोई रोक नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि जब तक अपील से संबंधित प्रावधानों के तहत कोई रोक नहीं है, तब तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित आदेशों के खिलाफ भी अपील स्वीकार्य होगी। उनका आगे कहना है कि विशेष अधिनियमों के तहत गठित विशेष न्यायालय, जिनमें राजस्व न्यायालय भी शामिल हैं, राजस्थान राज्य में राजस्व कानूनों अर्थात 1955 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम के तहत प्रदान किए गए मामलों के संबंध में शक्तियों और क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं, हालांकि उनके पास सिविल अदालतों के ढाँचे हो सकते हैं, वे सिविल अदालत नहीं हैं। राधेश्याम और अन्य बनाम छवि नाथ और अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में जहां तक सिविल अदालतों का संबंध है, एक अपवाद बनाया गया है, जिसमें कहा गया है कि सिविल अदालतों द्वारा पारित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। पूर्वोक्त अपवाद के अधीन, विभिन्न अधिनियमों के तहत गठित अदालतों और न्यायाधिकरणों द्वारा पारित अन्य आदेशों के संबंध में, जो अदालतें सिविल अदालतें और विशेष

[3]11 2017 (2) डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 275
12 एआईआरओएनएलआईएनई 2019 राजस्थान 403
13 2005 (2) डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 305
14 2002 (1) डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 67
15 2010 (3) डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 368

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

अधिनियमों के तहत गठित न्यायाधिकरण नहीं हैं, जिनके आदेशों के खिलाफ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार लागू होता है यह तर्क दिया गया है कि राजस्व मंडल एक न्यायालय नहीं है, बल्कि न्यायाधिकरण है और इसलिए, रिट क्षेत्राधिकार के अधीन है और जब भी उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार का आह्वान करने के लिए रिट याचिका दायर की जाती है, तब चाहे न्यायालय ने राहत दी हो या नहीं, राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के तहत प्रदान की गई अंतर-न्यायालय अपील पोषणीय होगी। बहस के दौरान विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने करतार सिंह बनाम राजस्व मंडल एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने माना कि राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के तहत अंतर-न्यायालय अपील भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए भी एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध होगी। विद्वान न्यायमित्र ने शालिनी श्याम शेट्टी एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल[16]; हरिनगर शुगर मिल्स लिमिटेड[4] बनाम श्याम सुंदर झुनझुनवाला एवं अन्य[17]**;** भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम नंदिनी जे**.** शाह एवं अन्य[18] और जोगेन्द्रसिंहजी विजयसिंहजी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य **(**सुप्रा**)**।

8. विद्वान एमिकस क्यूरी श्री आनंद शर्मा ने भी न्यायालय की सहायता की और प्रस्तुत किया कि राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय इस मुद्दे पर सीमित है कि क्या किसी सिविल न्यायालय द्वारा पारित आदेश रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है। 1955 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम में निहित विभिन्न प्रावधानों का हवाला देते हुए, विद्वान एमिकस क्यूरी ने प्रस्तुत किया कि राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है जब वह न्यायिक कार्य करता है लेकिन जब वह मुख्य राजस्व नियंत्रण प्राधिकारी के रूप में आदेश पारित करता है, तब ऐसा आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि हालांकि राजस्व बोर्ड और अन्य राजस्व न्यायालयों में सिविल न्यायालय के ढाँचे हो सकते हैं, छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) उन मामलों में लागू नहीं होता है जहां राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश को उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर करके चुनौती दी जाती है। विद्वान एमिकस क्यूरी ने महेंद्र कुमार जैन बनाम अपीलीय किराया न्यायाधिकरण**,** अजमेर **(**सुप्रा**);** राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य **(**सुप्रा**);** जोगेंद्रसिंहजी विजयसिंहजी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य **(**सुप्रा**);** शालिनी श्याम शेट्टी

[4]16 (2010) 8 एससीसी 329
17 एआईआर 1961 एससी 1669
18 (2018) 15 एससीसी 356

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल **(**सुप्रा**);** सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य[19]; अशोक के**.** झा एवं अन्य बनाम गार्डन सिल्क मिल्स लिमिटेड एवं अन्य[20]; और करतार सिंह बनाम [5] राजस्व बोर्ड एवं अन्य **(**सुप्रा**)** ; रमेश चंद तिवारी एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य **(**सुप्रा**)**; और सुख देव बनाम प्रकाश चंद्र[21] के मामलों में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है।

<u>मामलों का प्रासंगिक तथ्यात्मक मैट्रिक्स**:**</u>

9. इन अंतर-न्यायालयीय अपीलों की स्थिरता के पहलू पर विभिन्न कानूनी प्रस्तुतियों पर विचार करने से पहले, हम यह उल्लेख करना उचित समझते हैं कि सभी मामलों में, राजस्व मंडल द्वारा अपने पुनरीक्षण/अपीलीय अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए पारित आदेशों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत रिट याचिकाएँ दायर करके चुनौती दी गई थी। इसके अलावा, डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 756/2022, 781/2021, 785/2022, 977/2022, 996/2022 और 999/2022 विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा तीन रिट याचिकाओं में पारित 11.04.2022 के सामान्य आदेश से उत्पन्न हुई हैं। तीनों रिट याचिकाएँ याचिकाकर्ता श्रीमती आशा देवी अग्रवाल द्वारा राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेशों से व्यथित होकर दायर की गई थीं। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित सामान्य आदेश को प्रतिवादियों रत्ना उर्फ रतन लाल, किस्तूरी देवी, सुनील कुमार और विनोद ने रिट याचिकाओं में चुनौती दी है। विषयगत भूमि के दाखिल खारिज के आदेशों के संबंध में, उपरोक्त अपील में अपीलकर्ताओं में से

एक, रत्ना उर्फ रतन लाल ने 1956 के अधिनियम की धारा 82 के तहत तहसीलदार के समक्ष तीन दाखिल खारिज आदेशों के संबंध में संदर्भ के लिए एक आवेदन दायर किया, इस आधार पर कि वे दाखिल खारिज आदेश अवैध थे। नोटिस जारी करने के बाद, तहसीलदार ने कार्यवाही बंद कर दी और संदर्भ देने से इनकार कर दिया। बाद में, रत्ना उर्फ रतन लाल ने जिला कलेक्टर, अजमेर के समक्ष विलंब क्षमा के आवेदनों के साथ तीन अपीलें दायर कीं, जिनमें वर्ष 1967, 1968 और 1984 में पारित दाखिल खारिज आदेशों पर सवाल उठाया गया। विलंब क्षमा के आवेदनों के साथ-साथ अपीलों को भी खारिज कर दिया गया। अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर द्वारा पारित दिनांक 16.06.2005 के आदेश से व्यथित होकर, श्रीमती आशा देवी अग्रवाल ने राजस्व मंडल के समक्ष 1956 के अधिनियम की धारा 84 के अंतर्गत तीन पुनरीक्षण याचिकाएं दायर कीं। राजस्व मंडल

[5]19 (2003) 6 एससीसी 675
20 (2009) 10 एससीसी 584
21 2010 (2) डब्ल्यूएलसी (राज.) 500

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

ने अतिरिक्त संभागीय आयुक्त, अजमेर और जिला कलेक्टर, अजमेर द्वारा पारित आदेशों को रद्द कर दिया और उन्हें अलग रखा और साथ ही म्यूटेशन आदेशों को भी अलग रखा और विवादित भूमि को उन व्यक्तियों के नाम पर बहाल करने का निर्देश दिया जिनके नाम पहली बिक्री से पहले मौजूद थे। राजस्व मंडल द्वारा अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए पारित तीन आदेशों से व्यथित होकर, श्रीमती आशा देवी अग्रवाल ने तीन रिट याचिकाएं दायर कीं, जिन पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 11.04.2022 के सामान्य आदेश द्वारा निर्णय दिया गया, जिस पर रत्ना उर्फ रतन लाल, किस्तूरी देवी, सुनील कुमार और विनोद द्वारा उपरोक्त छह अपीलों में आपत्ति की गई है।

10. डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 410/2023 और 411/2023, रामेश्वर एवं सीताराम एवं अन्य द्वारा दायर दो रिट याचिकाओं में पारित दिनांक 17.04.2023 के सामान्य आदेश से उत्पन्न हुई हैं। भौंरी लाल (दोनों रिट याचिकाओं में प्रतिवादी संख्या 1) ने एसीएम-II, जयपुर के न्यायालय में घोषणा एवं स्थायी निषेधाज्ञा के लिए राजस्व वाद दायर किया, जो दिनांक 23.04.2012 के निर्णय द्वारा उनके पक्ष में पारित हुआ। उक्त निर्णय के विरुद्ध प्रथम अपील राजस्व अपीलीय प्राधिकारी द्वारा खारिज कर दी गई। राजस्व मंडल द्वारा द्वितीय अपील भी खारिज कर दी गई। राजस्व मंडल के आदेश की समीक्षा हेतु एक पुनरीक्षण याचिका भी दायर की गई, जिसे भी खारिज कर दिया गया। दिनांक 22.07.2015 के निर्णय द्वारा द्वितीय अपील की बर्खास्तगी तथा दिनांक 08.06.2016 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण याचिका की बर्खास्तगी के विरुद्ध विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष दो रिट याचिकाएं दायर की गईं, जिन्हें दिनांक 17.04.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसका उपरोक्त दोनों अपीलों में विरोध किया गया है।

11. डी.बी. सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 222/2023, प्रतिवादी हीरालाल द्वारा दायर एक रिट याचिका में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 18.01.2023 के आदेश से उत्पन्न हुई है, जो उपखंड अधिकारी, दांतारामगढ़, जिला सीकर द्वारा पारित दिनांक 23.02.2021 के आदेश से व्यथित है, जिसमें आदेश 7 नियम 11 के साथ पठित आदेश 9 नियम 9 सीपीसी के तहत एक आवेदन और राजस्व मंडल के आदेश को खारिज कर दिया गया था, और उपरोक्त आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया गया था। उस मामले में, प्रतिवादी-चित्रा सिंह ने अपीलकर्ता-प्रतिवादी हीरालाल और अन्य प्रतिवादियों के खिलाफ बेदखली, घोषणा और कब्जे के लिए वाद दायर किया था। राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेश के खिलाफ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर रिट याचिका खारिज कर दी गई, जिससे उपरोक्त अंतर-न्यायालय अपील उत्पन्न हुई।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

<u>विश्लेषण और निष्कर्ष</u>**:**

12. राजस्थान उच्च न्यायालय में अंतर-न्यायालयीय अपील की योजना राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 (जिसे आगे '1949 का अध्यादेश' कहा जाएगा) से जुड़ी है, जिसे महामहिम राजप्रमुख ने 21 जून, 1949 को प्रख्यापित किया था (अध्यादेश संख्या XV, 1949)। यह अध्यादेश, प्रसंविदा के अनुच्छेद X के पैराग्राफ (3) द्वारा प्रदत्त शक्तियों और इस संबंध में राजप्रमुख को सक्षम बनाने वाली अन्य सभी शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रख्यापित किया गया था। "उच्च न्यायालय की दीवानी अधिकारिता" अध्याय के अंतर्गत धारा 18 में न्यायालय के न्यायाधीशों के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का प्रावधान इस प्रकार है:

> **"18.** न्यायालय के न्यायाधीशों के निर्णय से उच्च न्यायालय में अपील।-(1) उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय (जो उच्च न्यायालय के अधीक्षण के अधीन किसी न्यायालय द्वारा अपीलीय अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में पारित डिक्री या आदेश के संबंध में अपीलीय अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में पारित निर्णय नहीं है और न ही पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में पारित आदेश है और न ही धारा 43 के अधीन अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में या आपराधिक अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में पारित या दिया गया दंडादेश या आदेश है) से उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।
>
> (2) इसमें पूर्व में उपबंधित किसी बात के होते हुए भी, उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय से, जो उच्च न्यायालय के अधीक्षण के अधीन किसी न्यायालय द्वारा अपीलीय अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में पारित डिक्री या आदेश के संबंध में अपीलीय अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में दिया गया हो, उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी, जहां निर्णय पारित करने वाला न्यायाधीश यह घोषित करता है कि मामला अपील के लिए उपयुक्त है।"

उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील का प्रावधान कुछ अपवादों के अधीन था। हालाँकि, अन्य अपवादों के साथ, एक अपवाद यह था कि धारा 43 के अंतर्गत अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में पारित आदेश के विरुद्ध अपील उपलब्ध नहीं थी, धारा 43 के अवलोकन से पता चलता है कि अधीक्षण की ऐसी शक्ति राजस्थान राज्य के सभी न्यायालयों, चाहे वे सिविल हों या आपराधिक, को प्रदान की गई थी, जो उस समय उच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के अधीन थे। इसलिए, सिविल या आपराधिक न्यायालयों पर अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में पारित आदेशों की सीमा तक, अंतर-न्यायालय अपील उपलब्ध नहीं थी।

13. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 225 के साथ पठित, 1949 के अध्यादेश की धारा 46 द्वारा प्रदत्त शक्तियों और इस संबंध में अन्य सभी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राजस्थान उच्च न्यायालय के नियम प्रख्यापित किए गए, जिन्हें "राजस्थान उच्च न्यायालय के नियम, 1952" के नाम से जाना जाता है। इसके नियम 134 में निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं:

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

> **"[134. विशेष अपील.-** एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध विशेष अपील करने का इच्छुक व्यक्ति ऐसे निर्णय की तिथि से तीस दिन के भीतर विधिवत स्टाम्पयुक्त अपील ज्ञापन प्रस्तुत करेगा। जहाँ ऐसी अपील ऊपर उल्लिखित अवधि के पश्चात प्रस्तुत की जाती है, वहाँ उसके साथ विलंब का कारण स्पष्ट करते हुए शपथ-पत्र द्वारा समर्थित आवेदन संलग्न किया जाएगा और उसे तब तक अस्वीकार कर दिया जाएगा जब तक कि अपीलकर्ता न्यायालय को यह संतुष्टि न दे दे कि उसके पास उक्त समय के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था।
>
> अपील ज्ञापन इस अध्याय के नियम 125, 130 और 131 के अनुसार तैयार किया जाएगा और उसके साथ अपील किए गए निर्णय या आदेश की प्रमाणित प्रति और निर्णय या आदेश की दो अतिरिक्त टाइप की गई प्रतियाँ संलग्न होंगी।]"

1949 के अध्यादेश की धारा 18 और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के संयुक्त अध्ययन से पता चलता है कि 1949 के अध्यादेश की धारा 18 के तहत अंतर-न्यायालय अपील के लिए मूल प्रावधान प्रदान किया गया था और मूल के साथ-साथ प्रक्रियात्मक पहलू को राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के तहत निपटाया गया था और नियम 134 में अंतर-न्यायालय अपील के संबंध में कोई अलग प्रावधान शामिल नहीं किया गया था।

14. 26.01.1950 से भारतीय संविधान के लागू होने के बाद, 1949 के अध्यादेश के प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 372 में निहित प्रावधानों के अधीन तब तक लागू और प्रचालन में बने रहे जब तक कि इसे संसद द्वारा अधिनियमित न्यायिक प्रशासन विधि (निरसन) अधिनियम, 2001 (2001 का संख्या 22) [जिसे आगे '2001 का निरसन अधिनियम' कहा जाएगा] द्वारा निरसित नहीं कर दिया गया। उपरोक्त अधिनियम द्वारा, 1949 के अध्यादेश सहित कई अधिनियम निरसित कर दिए गए। निरसन का प्रभाव यह हुआ कि निरसित राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 की धारा 18 के अंतर्गत अन्तर-न्यायालय अपील का प्रावधान करने वाले मूल प्रावधान भी निरसित हो गए। अंतर-न्यायालय अपील की स्वीकार्यता के संबंध में कानूनी स्थिति अनिश्चित हो गई और अंतत, **राजस्थान राज्य बनाम वी.आर.सी. मिश्रा एवं 6 अन्य**[22] के मामले में निम्नलिखित प्रश्न के निर्णय के लिए इस न्यायालय की पूर्ण पीठ को संदर्भ भेजा गया:[6]

> "क्या 29 अगस्त, 2001 को लागू हुए निरसन अधिनियम के साथ अंतर-न्यायालय अपील दायर करने का अधिकार समाप्त हो गया है, जिसके द्वारा राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश 1949 को निरस्त कर दिया गया था, जबकि संविधान के अनुच्छेद 225 में निहित न्याय प्रशासन के मामले में उच्च न्यायालय की शक्तियों को संरक्षित करने वाले कई अन्य विद्यमान प्रावधान राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 की धारा 52, 54 और 57 के साथ पढ़े गए हैं?"

[6]22 2003 (2) डब्ल्यूएलसी (राज.) 235

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

15. संदर्भ का उत्तर देते हुए, उपरोक्त मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस प्रकार टिप्पणी की:

> **"260.** निरसन अधिनियम, 2001 के 29.8.2001 को लागू होने के साथ ही अंतर-न्यायालय अपील का अधिकार समाप्त नहीं हो जाता, जिसके द्वारा राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 को निरस्त कर दिया गया था। राजस्थान उच्च न्यायालय में अंतर-न्यायालय अपील का अधिकार, और इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने की खंडपीठ की अधिकारिता, जो संविधान के अनुच्छेद 225 के अंतर्गत निहित थी और बाद में राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 की धारा 52 और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के अंतर्गत प्रदत्त की गई, राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश, 1949 के निरसन से प्रभावित या समाप्त नहीं हुई, जो संविधान के भाग VI के अध्याय V के अनुच्छेद 225 के अंतर्गत वर्णित विषयों और राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के भाग V में वर्णित विषयों के संबंध में लंबे समय से नियामक क़ानून नहीं रहा था।"

16. उपर्युक्त संदर्भ में पूर्ण पीठ के कथन के अनुसार, 1949 के अध्यादेश के निरसन के दिन, 2001 के निरसन अधिनियम के साथ अंतर-न्यायालय अपील का अधिकार समाप्त नहीं हुआ था। उपर्युक्त संदर्भ में पूर्ण पीठ ने आधिकारिक रूप से यह मत व्यक्त किया कि न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील की सुनवाई करने का खंडपीठ का अधिकार, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 के अंतर्गत निहित था और बाद में, राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (जिसे आगे '1956 का अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 52 और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के अंतर्गत प्रदत्त किया गया था, 1949 के अध्यादेश के निरसन से प्रभावित या निरस्त नहीं हुआ था।

17. हालांकि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के तहत विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए आदेश/निर्णय के खिलाफ अंतर-न्यायालय अपील की स्थिरता के संबंध में कानून में एक और अनिश्चितता व्याप्त है, जिसके कारण फिर से **रमेश चंद तिवारी एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य (सुप्रा)** के मामले में निम्नलिखित प्रश्न के निर्णय के लिए इस न्यायालय की एक अन्य पूर्ण पीठ को संदर्भित किया गया:

> "क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के प्रयोग में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए आदेश के खिलाफ डिवीजन बेंच में अंतर-न्यायालय अपील स्वीकार्य है?"

18. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार की व्याख्या करने वाले माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों का अवलोकन करने के पश्चात, अंतर-न्यायालयीय अपील की

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

स्वीकार्यता से संबंधित मुद्दे की जाँच की गई। 2001 के निरसन अधिनियम द्वारा 1949 के अध्यादेश को निरस्त करने के एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम पर ध्यान दिया गया और **राजस्थान राज्य बनाम वी.आर.सी. मिश्रा एवं 6 अन्य (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा संदर्भित उत्तर के अनुसार अंतर-न्यायालयीय अपील की स्वीकार्यता से संबंधित मुद्दे के निर्धारण पर भी विचार किया गया। राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के तत्कालीन विद्यमान नियम 134 को भी ध्यान में रखा गया। पूर्ण पीठ, 1949 के अध्यादेश की धारा 18 और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँची:

> "29. हम अपने निष्कर्ष का सारांश इस प्रकार देते हैं:-
>
> (i) संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति सदैव पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त होती है। यह अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त शक्ति से इस अर्थ में व्यापक है कि यह प्रक्रिया की उन तकनीकी जटिलताओं या पारंपरिक बंधनों के अधीन नहीं है जो उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार में पाए जाते हैं। अनुच्छेद 227 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार मूल क्षेत्राधिकार नहीं है, बल्कि यह अपीलीय, पुनरीक्षणीय या सुधारात्मक क्षेत्राधिकार के समान है।
>
> (ii) कोई भी व्यक्ति जो एकल न्यायाधीश के निर्णय/आदेश के विरुद्ध अंतर-न्यायालयीय अपील करना चाहता है, उसे खंडपीठ के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है, लेकिन यदि खंडपीठ यह पाती है कि एकल न्यायाधीश का निर्णय/आदेश पूर्णत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में दिया गया था, तो अंतर-न्यायालयीय अपील को पोषणीय न मानते हुए खारिज कर दिया जाएगा। अनुच्छेद 227 के अंतर्गत व्यापक पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के प्रयोग में एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय/आदेश अंतर-न्यायालयीय अपीलों के लिए उत्तरदायी हैं।"

19. यह राय बनाने का आधार कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत व्यापक पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय/आदेश अंतर-न्यायालयीय अपील के लिए उत्तरदायी हैं, 1949 के अध्यादेश की धारा 18 और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के संयुक्त वाचन पर आधारित था।

20. हालाँकि, एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम के रूप में, राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 को दिनांक 21.07.2005 की अधिसूचना द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जिसमें अब निम्नलिखित प्रावधान हैं:

> **"134. न्यायालय के न्यायाधीशों के निर्णय से उच्च न्यायालय में अपील**.-(i) उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय या अंतिम आदेश (जो उच्च न्यायालय के अधीक्षण के अधीन किसी न्यायालय द्वारा अपीलीय अधिकारिता के प्रयोग में पारित डिक्री या आदेश के संबंध में अपीलीय अधिकारिता के प्रयोग में पारित निर्णय नहीं है और पुनरीक्षण

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

अधिकारिता के प्रयोग में पारित आदेश नहीं है और अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में या आपराधिक अधिकारिता के प्रयोग में पारित या बनाया गया दंडादेश या आदेश नहीं है) के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

(ii) विशेष अपील।- एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध विशेष अपील करने का इच्छुक व्यक्ति ऐसे निर्णय की तिथि से साठ दिनों के भीतर विधिवत स्टाम्पयुक्त अपील ज्ञापन प्रस्तुत करेगा। जहाँ ऐसी अपील उपर्युक्त अवधि के पश्चात प्रस्तुत की जाती है, वहाँ उसके साथ विलंब का कारण स्पष्ट करते हुए शपथ-पत्र द्वारा समर्थित आवेदन संलग्न करना होगा और उसे तब तक अस्वीकार कर दिया जाएगा जब तक कि अपीलकर्ता न्यायालय को यह संतुष्ट न कर दे कि उसके पास उक्त समयावधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था।

अपील ज्ञापन इस अध्याय के नियम 125, 130 और 131 के अनुसार तैयार किया जाएगा और उसके साथ अपील किए गए निर्णय या आदेश की प्रमाणित प्रति और निर्णय या आदेश की दो अतिरिक्त टाइप की गई प्रतियाँ संलग्न होंगी।

21. यदि राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के पूर्व-प्रतिस्थापित नियम 134 और नए प्रतिस्थापित नियम 134 को एक साथ रखा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि नए प्रतिस्थापित नियम 134 में अंतर-न्यायालय अपील के संबंध में विशिष्ट प्रावधान थे। उस समय और 1949 के अध्यादेश के निरस्त होने तक, 1949 के अध्यादेश की धारा 18 में अंतर-न्यायालय अपील के लिए मूलभूत प्रावधान प्रदान किया गया था और इसके निरस्त होने के बाद और 2005 में राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के प्रतिस्थापन से पहले, राजस्थान राज्य बनाम वी.आर.सी. मिश्रा एवं 6 अन्य (सुप्रा) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा प्रतिपादित कानूनी स्थिति। में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि राजस्थान उच्च न्यायालय में अंतर-न्यायालय अपील का अधिकार और उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश/निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने के लिए खंडपीठ का अधिकार, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 के तहत निहित है और बाद में, 1956 के अधिनियम की धारा 52 और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के तहत प्रदत्त किया गया है, 1949 के अध्यादेश के निरसन से प्रभावित और निरस्त नहीं होगा।

22. राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 में निहित नए प्रतिस्थापित प्रावधान के लागू होने के बाद कानूनी स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हुए दिए गए आदेश को अंतर-न्यायालय अपील के दायरे से बाहर रखा गया था, जैसा कि राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नए नियम 134 के उप-नियम (i) में निहित प्रावधानों से स्पष्ट होगा।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

23. सुख देव बनाम प्रकाश चंद्र (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने माना कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के खिलाफ कोई अंतर-न्यायालय अपील नहीं होगी, जिसके परिणामस्वरूप अपील को बनाए रखने योग्य नहीं होने के कारण खारिज कर दिया गया। हालाँकि, बाद में, **करतार सिंह बनाम राजस्व मंडल और अन्य (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने राजस्थान राज्य **बनाम वी.आर.सी. मिश्रा और 6 अन्य (सुप्रा) और रमेश चंद तिवारी और अन्य बनाम राजस्व मंडल और अन्य (सुप्रा)** के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के तहत एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अंतर-न्यायालय अपील बनाए रखने योग्य होगी। यह निर्णय दो पूर्ण पीठ के निर्णयों के आधार पर दिया गया था, जिसमें तत्कालीन विद्यमान कानून, अर्थात् 1949 के अधिनियम की धारा 18 (जब यह लागू थी) और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 (जैसा कि यह प्रतिस्थापन से पहले था) को लागू करते हुए राय दी गई थी और संदर्भ का उत्तर दिया गया था, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के प्रयोग में एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के लिए कोई अपवाद किए बिना अंतर-न्यायालय अपील का प्रावधान किया गया था।

24. 1949 के अध्यादेश के निरस्त होने के बाद कानूनी स्थिति में आए महत्वपूर्ण बदलाव ने कानून की व्यवस्था को पूरी तरह से बदल दिया। राजस्थान उच्च न्यायालय में अंतर-न्यायालयीय अपील का अधिकार और विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय/आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई हेतु खंडपीठ की अधिकारिता, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 225 में निहित है और बाद में 1956 के अधिनियम की धारा 52 और राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के तहत प्रदत्त की गई, प्रभावित या निरस्त नहीं हुई, जैसा कि **राजस्थान राज्य बनाम वी.आर.सी. मिश्रा एवं 6 अन्य (सुप्रा)** के मामले में निर्णय दिया गया था, बल्कि 21.07.2005 से राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के प्रतिस्थापित नियम 134 द्वारा प्रदत्त तरीके से प्रतिबंधित कर दी गई।

25. उपरोक्त विचार के मद्देनजर, विद्वान न्यायमित्रों में से एक का यह निवेदन कि राजस्थान उच्च न्यायालय के नियमों का नियम 134 कोई रोक नहीं लगाता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अपील भी बनाए रखने योग्य होगी, इसका समर्थन नहीं किया जा सकता है और इसे अस्वीकार किया जा सकता है।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

26. विभिन्न उच्च न्यायालयों में, विशेष रूप से जब याचिकाएँ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के अंतर्गत दायर की जाती हैं, अंतर-न्यायालय अपील को विनियमित करने वाले विभिन्न लेटर पेटेंट नियमों और अन्य अधिनियम/नियमों की योजना के अंतर्गत, अंतर-न्यायालय अपील की स्वीकार्यता, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में विचारणीय रही है। अब हम विधिक परिदृश्य और न्यायशास्त्रीय विकास के माध्यम से यह जानेंगे कि कब और किन परिस्थितियों में, विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश/निर्णय के विरुद्ध अंतर-न्यायालय अपील स्वीकार्य होगी, जहाँ किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के अंतर्गत याचिका दायर की गई हो।

27. **उत्प्रेषण रिट से निपटने के दौरान भारत के संविधान के अनुच्छेद** 226 **के तहत अधिकार क्षेत्र का दायरा टी.सी. बसप्पा बनाम टी. नागप्पा एवं अन्य**[23] **के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था। भारत के संविधान के अनुच्छेद** 226 **के तहत अधिकार क्षेत्र के दायरे के सवाल पर इंग्लैंड के उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में विचार किया गया था, जो आमतौर पर भारतीय अदालतों के फैसलों का आधार बनते थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को विनियमित करने वाले व्यापक और मौलिक मानदंडों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, लेकिन भारतीय अदालतों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे स्पष्ट संवैधानिक प्रावधानों के मद्देनजर इंग्लैंड में रिट अधिकार क्षेत्र के शुरुआती इतिहास या प्रक्रियात्मक तकनीकीताओं को देखें। यह भी माना गया कि उत्प्रेषण रिट का उद्देश्य 'न्यायिक कृत्यों' की निगरानी करना था। यह भी स्पष्ट किया गया कि ऐसा रिट जारी करने वाला न्यायालय स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण और अधिकार क्षेत्र से बाहर के आदेश को रद्द कर देता है, लेकिन यह न्यायालय अपीलीय**[7]

न्यायालय के रूप में साक्ष्यों की समीक्षा नहीं करता, न ही अपने निष्कर्षों को अधीनस्थ न्यायाधिकरण के निष्कर्षों के स्थान पर प्रतिस्थापित करता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे उद्धृत हैं:

> “(6) **हमारे संविधान के अनुच्छेद** 32 **और** 226 **में प्रयुक्त भाषा बहुत व्यापक है और सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ भारत के सभी उच्च न्यायालयों की शक्तियाँ 'बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, अधिकार पृच्छा, प्रतिषेध और उत्प्रेषण की प्रकृति के रिटों सहित आदेश, रिट या निर्देश जारी करने तक विस्तारित हैं, जिन्हें मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए और उच्च न्यायालयों के मामले में अन्य उद्देश्यों के लिए भी आवश्यक माना जा सकता है। हमारे संविधान में स्पष्ट प्रावधानों के मद्देनजर हमें अब अंग्रेजी कानून में इन रिटों के प्रारंभिक इतिहास या प्रक्रियात्मक तकनीकीताओं को देखने की आवश्यकता नहीं है, न ही अंग्रेजी न्यायाधीशों द्वारा विशेष मामलों में व्यक्त किए गए किसी भी मतभेद या परिवर्तन से उत्पीड़ित महसूस करना चाहिए। हम सभी उपयुक्त मामलों में और उचित तरीके से 'उत्प्रेषण की प्रकृति में एक आदेश जारी कर सकते हैं' या एक रिट जारी कर सकते हैं, जब तक हम व्यापक और मौलिक सिद्धांतों का पालन करते हैं जो अंग्रेजी कानून में ऐसे रिटों के मामले में क्षेत्राधिकार के प्रयोग को विनियमित करते हैं।**
>
> (7) **'उत्प्रेषण रिट जारी करने के संबंध में एक मूलभूत सिद्धांत यह है कि इस रिट का उपयोग केवल न्यायिक कृत्यों को हटाने या उनकी वैधता पर निर्णय देने के लिए किया जा सकता है। "न्यायिक कृत्य" शब्द में प्रशासनिक निकायों या अन्य प्राधिकारियों या ऐसे कार्यों को करने के लिए बाध्य व्यक्तियों द्वारा अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग शामिल है और इसका प्रयोग विशुद्ध रूप से मंत्रिस्तरीय कृत्यों के विपरीत किया जाता है। एटकिन एल.जे. ने इस बिंदु पर कानून का सारांश इस प्रकार दिया है- 'रेक्स बनाम इलेक्ट्रिसिटी कमिश्नर्स'**, 1924-1 **केबी** 171 **पृष्ठ** 205 (**सी**):

[7]23 एआईआर 1954 एससी 440

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

"जब भी कोई निकाय या व्यक्ति, जिसके पास प्रजा के अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रश्नों का निर्धारण करने का कानूनी प्राधिकार हो और जिसका न्यायिक रूप से कार्य करने का कर्तव्य हो, अपने कानूनी प्राधिकार से अधिक कार्य करता है, तो वे इन रिटों में प्रयुक्त किंग्स बेंच डिवीजन के नियंत्रण क्षेत्राधिकार के अधीन होते हैं।"

'उत्प्रेषण रिट की दूसरी आवश्यक विशेषता यह है कि इसके माध्यम से न्यायिक या अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरणों या निकायों पर जो नियंत्रण किया जाता है, वह अपीलीय नहीं, बल्कि पर्यवेक्षी क्षमता में होता है। 'उत्प्रेषण रिट जारी करते समय, उच्च न्यायालय अपीलीय न्यायाधिकरण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करता। वह उन साक्ष्यों की समीक्षा या पुनर्मूल्यांकन नहीं करता जिन पर निम्न न्यायाधिकरण का निर्णय आधारित होने का दावा करता है। वह उस आदेश को रद्द कर देता है जिसे वह अधिकार क्षेत्र से बाहर या स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण मानता है, लेकिन निम्न न्यायाधिकरण के विचारों के स्थान पर अपने विचार नहीं रखता। आपत्तिजनक आदेश या कार्यवाही को, यूँ कहें कि, ऐसे आदेश के रूप में हटा दिया जाता है जिसका उपयोग किसी व्यक्ति के अहित के लिए नहीं किया जाना चाहिए, जैसा कि लॉर्ड केर्न्स के 'वल्सॉल्स ओवरसीयर्स बनाम एल. एंड एन. डब्ल्यू. रेलवे कंपनी, (1879) 4 एसी 30, पृष्ठ 39 (डी) में वर्णित है।

(8) 'उत्प्रेषण के रिटों के माध्यम से उच्च न्यायालय का पर्यवेक्षण दो बिंदुओं पर आधारित है, जैसा कि लॉर्ड सुमनर ने 'किंग बनाम नेट बेल लिकर्स लिमिटेड (1922) 2 एसी 128 पृष्ठ 156 (ई) में व्यक्त किया है। एक है निम्न अधिकार क्षेत्र का क्षेत्र और इसके प्रयोग की योग्यताएँ और शर्तें; दूसरा है इसके प्रयोग के दौरान कानून का पालन। ये दोनों शीर्षक सामान्यतः उन सभी आधारों को कवर करते हैं जिन पर 'उत्प्रेषण की रिट की मांग की जा सकती है। वास्तव में सिद्धांतों के प्रतिपादन में कोई कठिनाई नहीं है; कठिनाई वास्तव में किसी विशेष मामले के तथ्यों पर सिद्धांतों को लागू करने में उत्पन्न होती है।

(9) 'उत्प्रेषण तब दिया जा सकता है और आमतौर पर दिया जाता है जब किसी न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र के बिना या उसके बाहर काम किया हो। अधिकार क्षेत्र की कमी कार्यवाही की विषय-वस्तु की प्रकृति या कुछ प्रारंभिक कार्यवाही की अनुपस्थिति से उत्पन्न हो सकती है या न्यायालय स्वयं कानूनी रूप से गठित नहीं हो सकता है या बाहरी परिस्थितियों के कारण कुछ अक्षमता से ग्रस्त हो सकता है, 'हैल्सबरी, द्वितीय संस्करण, खंड IX, पृष्ठ 880 देखें। जब न्यायालय का अधिकार क्षेत्र कुछ संपार्श्विक तथ्य के अस्तित्व पर निर्भर करता है, तो यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय तथ्य के गलत निर्णय से उसे अधिकार क्षेत्र नहीं दे सकता है जो उसके पास अन्यथा नहीं होता, 'बनबरी बनाम फुलर, (1854) 9 एक्स 111 (एफ); -आर बनाम आयकर विशेष प्रयोजन आयुक्त, (1889) 21 क्यूबीडी 313 (जी)।

(10) एक न्यायाधिकरण जाँच करने के लिए सक्षम हो सकता है, लेकिन जाँच करते समय वह प्रक्रिया के नियमों की घोर अवहेलना कर सकता है या जहाँ कोई विशेष प्रक्रिया निर्धारित नहीं है, वहाँ वह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन कर सकता है। ऐसे मामले में 'उत्प्रेषण की रिट उपलब्ध हो सकती है। निर्णय या निर्धारण में त्रुटि भी 'उत्प्रेषण की रिट के लिए उत्तरदायी हो सकती है, लेकिन यह कार्यवाही के दौरान स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली एक स्पष्ट त्रुटि होनी चाहिए, उदाहरण के लिए, जब यह कानून के प्रावधानों की स्पष्ट अज्ञानता या अवहेलना पर आधारित हो। दूसरे शब्दों में, यह एक स्पष्ट त्रुटि है जिसे 'उत्प्रेषण द्वारा ठीक किया जा सकता है, लेकिन यह केवल एक गलत निर्णय नहीं है। 'उत्प्रेषण के माध्यम से उपाय की आवश्यक विशेषताओं को मॉरिस एल.जे. द्वारा हाल ही के मामले में उल्लेखनीय संक्षिप्तता और स्पष्टता के साथ बताया गया है - 'रेक्स बनाम नॉर्थम्बरलैंड मुआवजा अपीलीय न्यायाधिकरण, 1952-1 केबी 338 पृष्ठ 357 (एच)। विद्वान न्यायाधीश प्रभु कहते हैं:

"यह स्पष्ट है कि 'सर्टिओरारी' किसी अपील की आड़ में जारी नहीं की जाएगी। यह कार्यवाही में उठाए गए मुद्दे पर पुनर्विचार के लिए किसी आदेश या निर्णय को लाने के लिए नहीं है। यह किसी आदेश या निर्णय के दौरान प्रकट होने वाली कानूनी त्रुटि या अनियमितता या अधिकार क्षेत्र के अभाव या अधिकता को सुधारने के लिए मौजूद है।"

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया।)

28. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर दिए गए कई निर्णयों के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के बीच अंतर और भिन्नता को उपरोक्त मामले में स्पष्ट किया गया था, जिसे हमें इस स्तर पर संदर्भित करने की आवश्यकता नहीं है।

29. शालिनी श्याम शेट्टी एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल (सुप्रा) के मामले में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नीचे दिए गए अनुसार संक्षेप और विभेदित किया गया था:

"49. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के विश्लेषण के आधार पर, संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए जा सकते हैं:

(क) संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत याचिका, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका से भिन्न है। इन दोनों अनुच्छेदों के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग का तरीका भी भिन्न है।

(ख) किसी भी स्थिति में, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका को रिट याचिका नहीं कहा जा सकता। उच्च न्यायालयों को रिट अधिकार क्षेत्र प्रदान करने का इतिहास, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों को अधीक्षण की शक्ति प्रदान करने के इतिहास से मूलतः भिन्न है और इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

(ग) उच्च न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अपनी अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हुए, बिना सोचे-समझे, न्यायाधिकरणों या अपने से निम्नतर न्यायालयों के आदेशों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। न ही वे इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय या न्यायाधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपील न्यायालय के रूप में कार्य कर सकते हैं। इसके अधीनस्थ। ऐसे मामलों में जहाँ न्यायाधिकरण का कोई वैकल्पिक वैधानिक तरीका प्रदान किया गया है, वहाँ भी उच्च न्यायालय द्वारा इस शक्ति के प्रयोग पर एक अवरोधक के रूप में कार्य करेगा।

(घ) उच्च न्यायालयों द्वारा अपनी अधीक्षण शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप के मानदंड इस न्यायालय द्वारा बार-बार निर्धारित किए गए हैं। इस संबंध में, उच्च न्यायालय को इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा वरयाम सिंह बनाम अमरनाथ, एआईआर 1954 एससी 215 में निर्धारित सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होना चाहिए और वरयाम सिंह के सिद्धांतों का बाद की संविधान पीठों और इस न्यायालय के विभिन्न अन्य निर्णयों द्वारा बार-बार पालन किया गया है।

(ङ) वरयाम सिंह मामले में बाद के मामलों में अपनाए गए निर्णय के अनुसार, उच्च न्यायालय अपने अधीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए केवल अपने अधीनस्थ न्यायाधिकरणों और न्यायालयों को "उनके अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर" रखने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है।

(च) यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसे न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा कानून का पालन किया जाए, उन्हें प्रदत्त अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके और उन्हें प्रदत्त अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार न करके।

(छ) (ई) और (एफ) में उल्लिखित स्थितियों के अलावा, उच्च न्यायालय अपने अधीक्षण अधिकार के प्रयोग में तब हस्तक्षेप कर सकता है जब उसके अधीनस्थ न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के आदेशों में स्पष्ट रूप से विकृति रही हो या जहाँ न्याय की घोर और स्पष्ट विफलता हुई हो या प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया हो।

(ज) अपने अधीक्षण अधिकार का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय केवल कानून या तथ्य की त्रुटियों को सुधारने के लिए या केवल इसलिए हस्तक्षेप नहीं कर सकता क्योंकि उसके अधीनस्थ न्यायाधिकरणों या न्यायालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के अलावा कोई अन्य दृष्टिकोण संभव है। दूसरे शब्दों में, अधिकार क्षेत्र का प्रयोग बहुत ही संयम से किया जाना चाहिए।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

(झ) अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अधीक्षण शक्ति को किसी भी क़ानून द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता। एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ (1997) 3 एससीसी 261 मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने इसे संविधान के मूल ढाँचे का एक अंग घोषित किया है, इसलिए संविधान संशोधन द्वारा इसे संक्षिप्त करना भी असंवैधानिक है।

(ञ) यह सत्य हो सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1999 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 जैसे किसी समरूप प्रावधान में किया गया वैधानिक संशोधन अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियों के दायरे को कम नहीं करता और न ही कर सकता है। साथ ही, यह भी ध्यान रखना होगा कि ऐसा वैधानिक संशोधन अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के अधीक्षण के क्षेत्राधिकार का विस्तार नहीं करता।

(ठ) यह शक्ति विवेकाधीन है और इसका प्रयोग न्यायसंगत सिद्धांत पर किया जाना चाहिए। किसी उपयुक्त मामले में, इस शक्ति का प्रयोग स्वप्रेरणा से भी किया जा सकता है।

(ड) अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की व्यापक और असाधारण शक्तियों का समुचित मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस अनुच्छेद का मुख्य उद्देश्य उच्च न्यायालय द्वारा अपने क्षेत्राधिकार में न्याय प्रशासन पर कठोर प्रशासनिक और न्यायिक नियंत्रण बनाए रखना है।

(ढ) प्रशासनिक और न्यायिक दोनों प्रकार के अधीक्षण का उद्देश्य न्याय की संपूर्ण मशीनरी की दक्षता, सुचारु और व्यवस्थित कार्यप्रणाली को इस प्रकार बनाए रखना है कि इससे उसकी कोई बदनामी न हो। इस अनुच्छेद के अंतर्गत हस्तक्षेप की शक्ति को न्यूनतम रखा जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि न्याय का चक्र रुक न जाए और न्याय का स्रोत शुद्ध और अदूषित बना रहे ताकि उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायाधिकरणों और न्यायालयों के कामकाज में जनता का विश्वास बना रहे।

(ण) न्यायिक हस्तक्षेप की इस अनिश्चित और असाधारण शक्ति का प्रयोग केवल व्यक्तिगत मामलों में राहत प्रदान करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि व्यापक जनहित में न्याय प्रशासन में जनता का विश्वास बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए, जबकि अनुच्छेद 226 व्यक्तिगत शिकायतों के संरक्षण के लिए है। इसलिए, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत शक्ति अप्रतिबंधित हो सकती है, लेकिन इसका प्रयोग ऊपर बताए गए उच्चस्तरीय न्यायिक अनुशासन के अधीन है।

(त) इस शक्ति का अनुचित और बार-बार प्रयोग प्रतिकूल परिणाम देगा और इस असाधारण शक्ति की शक्ति और जीवन शक्ति को नष्ट कर देगा।

30. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के बीच अंतर और भेद पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उक्त अभिमत द्वारा उमाजी केशाओ मेश्राम एवं अन्य बनाम राधिकाबाई, अनंतराव बनुरकर की विधवा एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में अपने पहले के एक फैसले में विचार किया गया और स्पष्ट किया गया। यह माना गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही उच्च न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार के तहत होती है जबकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत कार्यवाही मूल नहीं बल्कि केवल पर्यवेक्षी होती है। यह भी माना गया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 227 भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 107 के प्रावधानों को काफी हद तक पुनः प्रस्तुत करता है, सिवाय इसके कि अधीक्षण की शक्ति को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 द्वारा न्यायाधिकरणों तक भी बढ़ा दिया गया है। इस अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया गया कि यद्यपि यह शक्ति एक सामान्य अपीलीय न्यायालय के समान है, फिर भी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत इस शक्ति का प्रयोग केवल उचित मामलों में, अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों को उनके अधिकार क्षेत्र में रखने के उद्देश्य से, न कि केवल त्रुटियों को सुधारने के लिए, संयमित रूप से किया जाता है। और यह भी प्रतिपादित किया गया कि इस शक्ति का प्रयोग गंभीर अन्याय या न्याय की विफलता के मामलों में भी किया जा सकता है।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

31. उमाजी केशाओ मेश्राम एवं अन्य बनाम राधिकाबाई, अनंतराव बनपुरकर की विधवा एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विचारार्थ जो प्रश्न आया, वह यह था कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दायर याचिका में उस उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध बॉम्बे उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के अंतर्गत उस उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की खंडपीठ में अपील की जा सकती है। लेटर्स पेटेंट के खंड 15 में अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान किया गया था कि उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध बॉम्बे उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी, जिसमें वर्तमान मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के समान प्रावधान शामिल हैं, जो लेटर्स पेटेंट अपील और भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 107 के प्रावधानों के तहत अधीक्षण की शक्तियों के प्रयोग में दिए गए आदेशों को दायरे से बाहर रखता है। विभिन्न न्यायिक घोषणाओं, लेटर्स पेटेंट में निहित प्रावधानों और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 में निहित प्रावधानों के सर्वेक्षण के बाद, निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियां की गईं:

> "**104**. बॉम्बे उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के अंतर्गत, "भारत सरकार अधिनियम की धारा 107 के प्रावधानों के अंतर्गत अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में पारित या किए गए आदेश" के विरुद्ध कोई अंतर-न्यायालय अपील नहीं की जा सकती। व्याख्या की उसी प्रक्रिया के अनुसार, जिसके कारण खंड 15 में "भारत सरकार अधिनियम की धारा 108 के अनुसरण में" वाक्यांश को "भारत के संविधान के अनुच्छेद 225 के अनुसरण में" पढ़ा जाना है, उसी प्रकार "भारत सरकार अधिनियम की धारा 107 के प्रावधानों के अंतर्गत अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में पारित या किए गए आदेश" वाक्यांश को "संविधान के अनुच्छेद 227 के प्रावधानों के अंतर्गत अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में पारित या किए गए आदेश" के रूप में पढ़ा जाना है। परिणाम यह है कि अनुच्छेद 227 के अंतर्गत किसी याचिका पर बॉम्बे उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय के विरुद्ध अंतर-न्यायालय अपील नहीं की जा सकती, क्योंकि लेटर्स पेटेंट के खंड 15 द्वारा ऐसी अपील पर स्पष्ट रूप से रोक लगाई गई है। उस उच्च न्यायालय का पेटेंट........
>
> 105. …………………
>
> **106.** .... जैसा कि हमने ऊपर देखा है, अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ एक अंतर-न्यायालय अपील पर रोक नहीं है, जबकि खंड 15 स्वयं अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका में एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ एक अंतर-न्यायालय अपील पर रोक लगाता है।
>
> **107**. कभी-कभी संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के अंतर्गत याचिकाएँ दायर की जाती हैं। इस न्यायालय के समक्ष हरि विष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद इशाक, एआईआर 1955 एससी 233 का मामला इसी प्रकार का था। नियम 18 में प्रावधान है कि जहाँ ऐसी याचिकाएँ अपीलीय पक्ष नियमों के अध्याय XVII के नियम 18 में निर्दिष्ट न्यायाधिकरणों या प्राधिकारियों के आदेशों के विरुद्ध या उस नियम में निर्दिष्ट न्यायालयों के आदेशों या डिक्री के विरुद्ध दायर की जाती हैं, तो उनकी सुनवाई और अंतिम निपटारा एकल न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा। प्रश्न यह है कि क्या ऐसे मामले में एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकेगी। हमारी राय में, जहां तथ्य संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत आवेदन दायर करने में किसी पक्ष को उचित ठहराते हैं, और पक्ष इन दोनों अनुच्छेदों के तहत अपना आवेदन दायर करना चुनता है, ऐसे पक्ष के प्रति निष्पक्षता और न्याय में और उसे अपील के मूल्यवान अधिकार से वंचित नहीं करने के लिए अदालत को आवेदन को अनुच्छेद 226 के तहत किया गया मानना चाहिए, और यदि मामले का फैसला करते समय, अंतिम आदेश में अदालत सहायक निर्देश देती है जो अनुच्छेद 227 से संबंधित हो सकते हैं, तो इसे लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत अपील के अधिकार से किसी पक्ष को वंचित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए, जहां आदेश का पर्याप्त हिस्सा जिसके खिलाफ अपील की जानी है, अनुच्छेद 226 के तहत है। ...."

32. उमाजी केशाओ मेश्राम एवं अन्य बनाम राधिकाबाई, अनंतराव बनपुरकर की विधवा एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में प्रतिपादित उपरोक्त सिद्धांतों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में भरोसा किया है और उन्हें पुनः दोहराया है।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

33. सुशीलाबाई लक्ष्मीनारायण मुदलियार एवं अन्य बनाम निहालचंद वाघजीभाई शाह एवं अन्य[24] के मामले में, बॉम्बे उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट के अंतर्गत अंतर-न्यायालयीय अपील की स्वीकार्यता के संबंध में एक मुद्दा फिर से विचारार्थ उठा, जहाँ रिट याचिका में लिए गए आधारों से स्पष्ट मिलता है कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक याचिका थी और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा[8] पारित आदेश भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत था। यह इस प्रकार माना गया:

"4. बॉम्बे उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने उपरोक्त उमाजी केशव मेश्राम मामले को गलत समझा। उमाजी मामले में यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि जहां तथ्य किसी पक्ष को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत आवेदन दायर करने का अधिकार साबित करते हैं और पक्षकार न्याय की निष्पक्षता में इस देने लेखों के तहत अपना आवेदन दायर करना चुनता है और उसे अपील के मूल्यवान अधिकार से वंचित नहीं करने के लिए न्यायालय को आवेदन को अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत करना चाहिए और यदि मामले का फैसला करते समय, अंतिम आदेश में न्यायालय सहायक निर्देश देता है जो अनुच्छेद 227 से संबंधित हो सकते हैं, तो इसे लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत अपील के अधिकार से किसी पक्षकार को वंचित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए जहां अपील किए जाने वाले आदेश का पर्याप्त हिस्सा अनुच्छेद 226 के तहत है। बॉम्बे उच्च न्यायालय के अपीलीय पक्ष नियमों के नियम 18 को लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के साथ पढ़ा जाए तो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय से उच्च न्यायालय की खंडपीठ में अपील का प्रावधान है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका। वर्तमान मामले में डिवीजन बेंच का यह मानना स्पष्ट रूप से गलत था कि विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ अपील पोषणीय नहीं थी। इन परिस्थितियों में हम डिवीजन बेंच के विवादित आदेश को रद्द करते हैं और निर्देश देते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ दायर लेटर्स पेटेंट अपील पर अब सुनवाई की जाएगी और गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाएगा। इस तथ्य के मद्देनजर कि यह एक पुराना मामला है, हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि वह लेटर्स पेटेंट अपील पर छह महीने के भीतर निर्णय दे। यह भी निर्देश दिया जाता है कि लेटर्स पेटेंट अपील के अंतिम निपटारे तक एकल न्यायाधीश के आदेश का क्रियान्वयन स्थगित रहेगा। अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है और लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।"

34. हालांकि, एक दशक बाद, सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में, यह माना गया कि सिविल कोर्ट का आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन है। यह और माना गया कि दो क्षेत्राधिकारों, एक भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत और दूसरा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत, के बीच का अंतर व्यवहार में लगभग मिट गया है और यही कारण है कि यह प्रथा बन गई है कि वकील अपनी याचिकाओं को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत एक के रूप में लेबल कर रहे हैं, हालांकि इस तरह की प्रथा को कुछ न्यायिक घोषणाओं में निंदित किया गया है। यह माना गया कि सिविल कोर्ट द्वारा पारित आदेश भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हैं।

35. किशोरीलाल बनाम क्षेत्रीय अधिकारी, जिला भूमि विकास बैंक एवं अन्य[25] के मामले में, अंतर-न्यायालय अपील की स्थिति के संबंध में एक मुद्दा इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में विचार के लिए उठा कि सहकारी बैंक द्वारा दिए गए ऋण की राशि के चुकाने में कथित विफलता पर वसूली की कार्यवाही शुरू की गई थी। बैंक के पास गिरवी रखी गई जमीन बेच दी गई थी। बिक्री की कार्यवाही को संयुक्त रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां, भोपाल के समक्ष दायर अपील में चुनौती दी गई थी जिसे भी खारिज कर दिया गया था। उस आदेश के खिलाफ, सहकारी कानूनों के तहत प्रदान की गई दूसरी अपील राज्य सहकारी न्यायाधिकरण के समक्ष पेश की गई थी जिसे अनुमति दी गई थी। राज्य सहकारी न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के खिलाफ, बैंक के क्षेत्रीय अधिकारी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की जिसे अनुमति दी गई थी। उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष उधारकर्ता द्वारा दायर एक लेटर्स पेटेंट अपील[9] को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के तहत दायर की गई थी और सुशीलाबाई लक्ष्मीनारायण मुदलियार एवं अन्य बनाम निहालचंद वाघजीभाई शाह एवं अन्य के मामले में अपने पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

---

[8]24 1993 सप्प (1) एससीसी 11

[9]25 (2006) 7 एससीसी 496

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

"13. हमारी राय में, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने राजस्व मंडल द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके एक त्रुटि की है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने भी एलपीए के इस बात पर ध्यान दिए बिना गलत तरीके से खारिज कर दिया कि यदि रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की जाती, तो अपील स्वीकार्य होती, जैसा कि इस न्यायालय ने सुशीलाबाई लक्ष्मीनारायण मुदलियार बनाम निहालचंद वाघजीभाई शाह मामले में माना था।"

36. अशोक के. झा एवं अन्य बनाम गार्डन सिल्क मिल्स लिमिटेड एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में, विचारणीय प्रश्नों में से एक यह था कि क्या बॉम्बे उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत लेटर्स पेटेंट अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश से पोषणीय थी।

नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच विवाद के मामले में, श्रम न्यायालय ने बॉम्बे औद्योगिक संबंध अधिनियम, 1946 के तहत एक आदेश पारित किया। स्थानांतरण आदेश को चुनौती खारिज कर दी गई। कर्मचारी और संघ ने तब औद्योगिक न्यायालय, सूरत के समक्ष एक संयुक्त अपील की। औद्योगिक न्यायालय ने श्रम न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया और नियोक्ता को स्थानांतरण आदेश वापस लेने का निर्देश दिया। इस आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत गुजरात उच्च न्यायालय में याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी। याचिका खारिज होने के बाद, नियोक्ता ने डिवीजन बेंच के समक्ष लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत लेटर्स पेटेंट अपील को प्राथमिकता दी। विचार के लिए उठे प्रश्न के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उमाजी केशाओ मेश्राम और अन्य बनाम राधिकाबाई, अंबादास बनुरकर की विधवा और अन्य (सुप्रा) के मामले में अपने पहले के फैसले का हवाला दिया और उस पर भरोसा किया],

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अशोक के. झा एवं अन्य बनाम गार्डन सिल्क मिल्स लिमिटेड एवं अन्य (सुप्रा) के उपरोक्त मामले में अपील की स्थिति के संबंध में समान मुद्दे से निपटने वाले अपने पहले के निर्णयों पर विचार किया, जहां रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की गई थी और नीचे दिए गए न्याय शास्त्रीय विकास:

"29. रत्नागिरी जिला केंद्रीय सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम दिनकर काशीनाथ वाटवे 1993 सप्प (1) एससीसी 9 में इस न्यायालय ने माना कि एक रिट याचिका में एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ अपील की स्थिति के सवाल का निर्धारण करने के लिए जहां संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों का उल्लेख किया गया है, डिवीजन बेंच को यह पता लगाना होगा कि क्या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के तहत विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्णय पारित किया गया है।

30. न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया: (रत्नागिरी जिला सहकारी बैंक लिमिटेड मामला, एससीसी पृ. 9-10, पैरा 2-3)

"2. इस मामले में एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय का यह मानना सही था कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के तहत दायर की गई याचिका में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए फैसले के खिलाफ लेटर्स पेटेंट अपील नहीं होगी। विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ के फैसले को पढ़ने और पक्षों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, हमारी राय में, खंड 15 के तहत लेटर्स पेटेंट अपील के दायरे के बारे में प्रश्न इस न्यायालय द्वारा उमाजी केशाओ मेश्राम बनाम राधिकाबाई में दिए गए फैसले में स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी: (एससीसी पृष्ठ 473, पैरा 107)

'107. कभी-कभी संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के अंतर्गत याचिकाएँ दायर की जाती हैं। इस न्यायालय के समक्ष हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक का मामला इसी प्रकार का था। नियम 18 में प्रावधान है कि जहाँ ऐसी याचिकाएँ अपीलीय पक्ष नियमों के अध्याय XVII के नियम 18 में निर्दिष्ट न्यायाधिकरणों या प्राधिकारियों के आदेशों के विरुद्ध या उस नियम में निर्दिष्ट न्यायालयों के आदेशों या डिक्री के विरुद्ध दायर की जाती हैं, तो उनकी सुनवाई और अंतिम निपटारा एकल न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा। प्रश्न यह है कि क्या ऐसे मामले में एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। हमारी राय में, जहां तथ्य संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत आवेदन दायर

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

करने में किसी पक्ष के उचित ठहराते हैं और पक्ष इन दोनों अनुच्छेदों के तहत आवेदन दायर करना चुनता है, ऐसे पक्ष के प्रति निष्पक्षता और न्याय में और उसे अपील के मूल्यवान अधिकार से वंचित नहीं करने के लिए आवेदन को अनुच्छेद 226 के तहत माना जाना चाहिए और यदि मामले का फैसला करते समय, अंतिम आदेश में आकस्मिक निर्देश होते हैं जो अनुच्छेद 227 से संबंधित हो सकते हैं, तो इससे लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत अपील के अधिकार से किसी पक्ष को वंचित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए जहां आदेश का पर्याप्त हिस्सा जिसके खिलाफ अपील की जानी है, अनुच्छेद 226 के तहत है। ऐसा दृष्टिकोण इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा एलेन सिंह बनाम करण सिंह एआईआर 1957 ऑल 414 में और पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा राज किशन जैन बनाम तुलसी दास एआईआर 1959 पंजाब 291 और बरहम दत्त बनाम पीपुल्स को-ऑपरेटिव ट्रांसपोर्ट सोसायटी लिमिटेड एआईआर 1961 पंजाब 24 में लिया गया था और हम इससे सहमत हैं।

3. यह स्पष्ट है कि जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दी गई राहत स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि वह संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत नहीं बल्कि अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहे थे और इस मामले के इस दृष्टिकोण से और इस माननीय न्यायालय द्वारा उपर्युक्त निर्णय में जो निर्धारित किया गया है उसके आलोक में खंड 15 के तहत लेटर्स पेटेंट अपील उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष स्वीकार्य होगी। इसलिए, अपील स्वीकार की जाती है और विद्वान खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय को रद्द किया जाता है। मामला उच्च न्यायालय को वापस भेजा दिया गया है और यह उम्मीद की जाती है कि खंडपीठ अपील की योग्यता के आधार पर सुनवाई करेगी और इसे कानून के अनुसार शीघ्रता से, अधिमानतः आज से चार महीने के भीतर निपटाएगी।"

31. सुशीलाबाई लक्ष्मीनारायण मुदलियार बनाम निहालचंद वाघजीभाई शाह में न्यायालय ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 14, पैरा 4)

4. बॉम्बे उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने उमाजी केशव मेश्राम मामले को गलत समझा। उमाजी मामले में यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि जहां तथ्य किसी पक्ष को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत आवेदन दायर करने का औचित्य साबित करते हैं और पक्षकार न्याय की निष्पक्षता में इन दोनों अनुच्छेदों के तहत आवेदन दायर करना चुनता है और उसे अपील के मूल्यवान अधिकार से वंचित नहीं करने के लिए न्यायालय को आवेदन को अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत मानना चाहिए और यदि मामले का फैसला करते समय, अंतिम आदेश में न्यायालय आकस्मिक निर्देश देता है जो अनुच्छेद 227 से संबंधित हो सकते हैं, तो इससे लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत अपील के अधिकार से किसी पक्षकार को वंचित करने वाला नहीं माना जाना चाहिए जहां अपील किए जाने वाले आदेश का पर्याप्त हिस्सा अनुच्छेद 226 के तहत है। बॉम्बे उच्च न्यायालय के अपीलीय पक्ष नियमों के नियम 18 को लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के साथ पढ़ा जाए तो विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय की खंडपीठ में अपील का प्रावधान है। न्यायाधीश ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका पर यह आदेश पारित किया। वर्तमान मामले में, खंडपीठ का यह निर्णय स्पष्ट रूप से गलत था कि विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध अपील स्वीकार्य नहीं थी। इन परिस्थितियों में, हम खंडपीठ के विवादित आदेश को रद्द करते हैं और निर्देश देते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध दायर लेटर्स पेटेंट अपील पर अब सुनवाई की जाएगी और गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाएगा।"

32. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत दायर रिट याचिका में एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट अपील की स्वीकार्यता का मुद्दा किशोरीलाल बनाम जिला भूमि विकास बैंक मामले में इस न्यायालय के समक्ष पुनः विचारार्थ आया। न्यायालय ने यह निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 500, पृष्ठ 13)

"13. हमारी राय में, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने राजस्व बोर्ड द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके गलती की है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने भी एलपीए को इस बात पर ध्यान दिए बिना गलत तरीके से खारिज कर दिया

कि यदि रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की गई होती, तो अपील सुनवाई योग्य होती, जैसा कि इस न्यायालय ने सुशीलाबाई लक्ष्मीनारायण मुदलियार बनाम निहालचंद वाघजीभाई शाह में माना था।"

33. इस विषय पर चर्चा इस न्यायालय के दो हालिया निर्णयों (i) मध्य प्रदेश राज्य बनाम विसन कुमार शिव चरण लाल (2008) 15 एससीसी 233, और (ii) रमेश चंद्र संकला बनाम विक्रम सीमेंट (2008) 14 एससीसी 58 के संदर्भ के बिना अधूरी होगी।

34. विसन कुमार शिव चरण लाल मामले में इस न्यायालय ने उमाजी, सुशीलाबाई लक्ष्मीनारायण और रत्नागिरी जिला सहकारी बैंक लिमिटेड के पूर्व निर्णयों का हवाला दिया और कहा: (विसन कुमार शिव चरण लाल मामला, एससीसी पृ 237-38, पैरा 4)

"4. ... '1. ... जब किसी आवेदन के वाद शीर्षक में संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 दोनों का उल्लेख किया गया हो, तब भी विद्वान एकल न्यायाधीश को प्रत्येक विशिष्ट मामले के तथ्यों के अनुसार यह निर्णय लेने की स्वतंत्रता है कि क्या उक्त आवेदन पर केवल संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत ही विचार किया जाना चाहिए। एकल न्यायाधीश के ऐसे निर्णय के विरुद्ध अपील की स्वीकार्यता के प्रश्न का निर्धारण करने के लिए, खंडपीठ को यह पता लगाना होगा कि क्या विद्वान एकल न्यायाधीश ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए मूलतः निर्णय पारित किया है। यदि किसी आवेदन पर, जिसके वाद शीर्षक में अनुच्छेद 226 और 227 दोनों का उल्लेख किया गया हो, आदेश निर्णय पारित करते समय एकल न्यायाधीश ने वास्तव में केवल अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अपनी पर्यवेक्षी शक्तियों का ही प्रयोग किया हो, तो खंड 15 के अंतर्गत अपील मान्य नहीं होगी। लेटर्स पेटेंट का खंड 15 पुनरीक्षणात्मक या पर्यवेक्षी शक्तियों के अंतर्गत पारित एकल न्यायाधीशों के आदेशों के विरुद्ध अपीलों पर स्पष्ट रूप से रोक लगाता है। यहाँ तक कि जब विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश दोनों अनुच्छेदों के अंतर्गत पारित किया गया हो, तब भी ऐसे आदेशों के विरुद्ध अपील की पोषणीयता का निर्णय करते समय, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय द्वारा प्रदत्त मुख्य या प्रमुख राहत प्रासंगिक होगी, न कि उनके द्वारा दिए गए सहायक निर्देश। 'सहायक' शब्द का अर्थ, संदर्भ में, आदेशों के मुख्य भाग से संबंधित या परिणामी है। ..."

35. विसन कुमार शिव चरण लाल मामले में इस न्यायालय ने आगे यह भी माना कि निर्णायक कारक एकल न्यायाधीश द्वारा पारित मूल आदेश की वास्तविक प्रकृति है, जिसके विरुद्ध अपील की गई है और न तो वाद शीर्षक में दोनों अनुच्छेदों के अनुप्रयोग का उल्लेख करना और न ही एकल न्यायाधीश द्वारा उस पर सहायक आदेश देना प्रासंगिक होगा और प्रत्येक मामले में खंडपीठ को अपीलाधीन निर्णय के सार पर विचार करना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि एकल न्यायाधीश ने संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का मुख्य या मुख्यतः प्रयोग किया है या नहीं। रमेश चंद्र संकला मामले में इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 75, पैरा 47)

"47. हमारे निर्णय में, अपीलार्थी के विद्वान वकील का यह तर्क सही है कि कार्यवाही का नामकरण या संविधान के किसी विशेष अनुच्छेद का संदर्भ अंतिम या निर्णायक नहीं है। उनका यह तर्क भी सही है कि एकल न्यायाधीश द्वारा यह अवलोकन कि उन्होंने मामले को किस प्रकार निपटाया, निर्णायक नहीं है। यदि ऐसा होता, तो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आने वाली याचिका का निपटारा एकल न्यायाधीश द्वारा यह अवलोकन करते हुए किया जा सकता था कि वे संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं। क्या एकल न्यायाधीश का ऐसा कथन पीड़ित पक्ष से निर्णय के विरुद्ध अपील का अधिकार छीन सकता है यदि याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आती है और अपील न्यायालय लेटर्स पेटेंट अपील के अधीन है? उत्तर निःसंदेह नकारात्मक है...।"

36. यदि अपीलाधीन निर्णय अनुच्छेद 227 के अंतर्गत आता है तो यह कहना आवश्यक है कि ऐसे निर्णय के विरुद्ध न्यायालय के भीतर अपील स्वीकार्य नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि याचिकाकर्ता ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किसी रिट को जारी करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, हालाँकि अनुच्छेद 227 का भी उल्लेख किया गया है, और मुख्यतः जिस निर्णय के विरुद्ध अपील की गई है

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

वह अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आता है तो अपील स्वीकार्य होगी। यह जानना महत्वपूर्ण है कि एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की वास्तविक प्रकृति क्या है, न कि यह कि ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय उन्होंने किस प्रावधान का उल्लेख किया है।

37. हम रमेश चंद्र संकला मामले में इस न्यायालय के इस मत से सहमत हैं कि एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह कथन कि उन्होंने अनुच्छेद 227 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया है, ऐसे निर्णय के विरुद्ध अपील के अधिकार को नहीं छीन सकता, यदि यह पाया जाता है कि उन्होंने अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया है। अंतर-न्यायालयीय अपील की पोषणीयता के निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण कारक पक्षकार द्वारा प्रयुक्त क्षेत्राधिकार की प्रकृति और एकल न्यायाधीश द्वारा पारित मूल आदेश की वास्तविक प्रकृति है।

38. जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, रिट याचिका (सिविल विविध सिविल आवेदन) के वाद शीर्षक में संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 का उल्लेख किया गया है। रिट याचिका का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर पता चलता है कि रिट याचिका उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार तक सीमित नहीं है। निवेदक ने उत्प्रेषण रिट की प्रार्थना करके उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान किया है। रिट याचिका में प्रार्थना खंड में कहा गया है "उपर्युक्त परिस्थितियों के मद्देनजर, आवेदक माननीय सदस्य उत्प्रेषण रिट या कोई अन्य उचित आदेश जारी करने की कृपा कर सकते हैं..." इस प्रकार, एकल न्यायाधीश का निर्णय अनुच्छेद 226 से संबंधित है। एकल न्यायाधीश द्वारा अपने आदेश में दिया गया यह कथन कि संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है, निर्णायक नहीं है।

39. इसके अलावा, खंडपीठ ने अपने आदेश में कहा, "यद्यपि इस अपील की पोषणीयता के प्रश्न पर लंबी-चौड़ी दलीलें दी गईं, फिर भी अपील की पोषणीयता के प्रश्न पर वास्तव में कोई गंभीर विवाद नहीं था।"

40. इन सभी कारणों से, हम मानते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 1-10-2007 के आदेश से लेटर्स पेटेंट अपील पोषणीय थी। हम प्रश्न (2) का उत्तर सकारात्मक रूप से देते हैं।"

38. हालाँकि, बाद में, सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य (सुप्रा) मामले में लिए गए दृष्टिकोण की सत्यता, जिसमें यह घोषित किया गया था कि सिविल न्यायालयों के आदेश भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हैं, पर संदेह किया गया क्योंकि यह नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य[26] और रूपा अशोक हुर्रा बनाम अशोक हुर्रा एवं अन्य[27] मामले में दिए गए निर्णयों के अनुपात के विपरीत था, जिसके कारण राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) मामले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया गया। संदर्भ आदेश, अन्य बातों के साथ, इस प्रकार है

"30. ... इसलिए, दुर्भाग्यवश यह न्यायालय सूर्य देव राय मामले में व्यक्त दृष्टिकोण से असहमत है, जहां तक उत्प्रेषण रिट द्वारा सिविल न्यायालय के न्यायिक आदेशों में सुधार या किसी हस्तक्षेप का संबंध है।

31. संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत, उच्च न्यायालय उत्प्रेषण रिट जारी नहीं करता है। संविधान का अनुच्छेद 227 उच्च न्यायालयों को अधीक्षण की शक्ति प्रदान करता है, जिसका प्रयोग न्यायाधिकरणों और न्यायालयों को उनके अधिकार की सीमाओं के भीतर रखने के लिए बहुत ही संयम से किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 227 के तहत, सिविल और अर्ध-न्यायिक दोनों न्यायालयों के आदेशों की जांच केवल बहुत ही असाधारण मामलों में की जा सकती है, जब न्याय की स्पष्ट चूक हुई हो। हालाँकि, ऐसी शक्ति का प्रयोग तथ्य और कानून की गलती को सुधारने के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

32. अनुच्छेद 226 और 227 के बीच शक्तियों के प्रयोग में आवश्यक अंतर सर्वविदित हैं और सूर्य देव राय मामले में इनका उल्लेख किया गया है और इससे हमारी कोई असहमति नहीं है। लेकिन हम सूर्य देव राय मामले में प्रतिपादित इस विधिक प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं कि किसी सिविल न्यायालय द्वारा पारित न्यायिक आदेशों की जाँच की जा सकती है और फिर रिट न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उत्प्रेषण रिट[10]

---

[10]26 एआईआर 1967 एससी 1

27 (2002) 4 एससीसी 388

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन्हें संशोधित/उलट किया जा सकता है। हमारा विचार है कि सूर्यदेव राय मामले में प्रतिपादित उपरोक्त प्रस्ताव, मिर्ज़ाजर मामले में दिए गए अनुपात के विपरीत है और मिर्ज़ाजर मामले में दिए गए अनुपात को स्पष्ट रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्यदेव राय मामले में रद्द नहीं किया गया है।

33. सूर्यदेव राय मामले में व्यक्त विचारों से हमारे मतभेद को देखते हुए, ऊपर चर्चा किए गए प्रश्न पर सूर्यदेव राय मामले में निर्धारित कानून की सत्यता या असत्यता पर विचार करने के लिए एक बड़ी पीठ गठित करने के लिए मामला भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जा सकता है।

39. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की वृहद पीठ ने राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) मामले में विचार के आरंभ में इस प्रकार टिप्पणी की:

"**3.** जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, मामले की सुनवाई करने वाले दो माननीय न्यायाधीशों की पीठ सूर्यदेव राय मामले में प्रतिपादित कानून का पालन करने के लिए सहमत नहीं थी। यह देखा गया कि सूर्यदेव राय मामले में दिए गए फैसले में नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में इस न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ के पूर्व के फैसले में प्रतिपादित अनुपात का सही ढंग से मूल्यांकन नहीं किया गया था, जिसमें यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि "सिविल क्षेत्राधिकार वाले अवर न्यायालयों के निर्णयों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण पत्र (सर्टिओरारी) लागू नहीं होता (अनुच्छेद 62)।"

40. टी.सी. बसप्पा बनाम टी. नागप्पा एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए और इंग्लैंड में उत्प्रेषण रिट की ऐतिहासिक उत्पत्ति और भारत के संविधान के लागू होने से पहले और बाद में भारत में इसके अनुप्रयोग का पता लगाने के बाद, राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह उचित रूप से देखा गया था:

"**11.** यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि "न्यायिक कृत्य" पद का तात्पर्य सिविल न्यायालयों के न्यायिक आदेशों से नहीं है क्योंकि इस न्यायालय के समक्ष मामला चुनाव न्यायाधिकरण के आदेश से उत्पन्न हुआ था और सूर्यदेव राय के मामले को छोड़कर, इस न्यायालय का कोई भी प्रत्यक्ष निर्णय हमारे संज्ञान में नहीं लाया गया है जहाँ किसी न्यायिक न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट जारी की गई हो। वास्तव में, जब बाद के निर्णयों में अधिकार क्षेत्र के दायरे का प्रश्न उठा, तो यह स्पष्ट किया गया कि न्यायिक न्यायालयों के आदेश प्राधिकारियों या न्यायाधिकरणों के अर्ध-न्यायिक आदेशों से भिन्न आधार पर होते हैं।"

41. श्रीमती उज्जम बाई बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य[28] के मामले में एक अन्य निर्णय का भी उल्लेख किया गया और राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में इस पर भरोसा किया गया, जैसा कि नीचे दिया गया है:

"**12**. उज्जम बाई बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में, बिक्री कर कानून के प्रावधानों के तहत पारित एक मूल्यांकन आदेश के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट के दायरे पर सात न्यायाधीशों की एक पीठ को मामला भेजा गया था, जो एक मौलिक अधिकार का उल्लंघन था। छह न्यायाधीशों के बहुमत ने यह विचार व्यक्त किया कि किसी शून्य कानून या "अधिकार से बाहर" या[11]

"अधिकार क्षेत्र के बिना" आदेश के तहत किसी आदेश को छोड़कर, किसी अर्ध-न्यायिक आदेश या किसी वैधानिक प्राधिकारी द्वारा मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है और ऐसे आदेश को अनुच्छेद 32 के तहत चुनौती नहीं दी जा सकती है। हालाँकि, अनुच्छेद

[11]28 एआईआर 1962 एससी 1621

226 के तहत एक स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण आदेश के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट दायर की जा सकती है। यह देखा गया कि न्यायालयों के न्यायिक आदेश अलग-अलग आधार पर होते हैं। न्यायमूर्ति अंसारी ने कहा: (एआईआर पृष्ठ 1679-80, अनुच्छेद 155)

"155. निष्कर्ष निकालने से पहले, एक ऐसे विषय पर ध्यान देना आवश्यक है जिस पर बहस के दौरान अभी-अभी चर्चा हुई थी, क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिस पर विचार तब किया जा सकता था जब यह वास्तव में उठे, और यह इस प्रश्न से संबंधित था कि क्या किसी सामान्य न्यायालय के निर्णय या आदेश, जो किसी विशेष क़ानून के तहत गठित या सृजित न्यायाधिकरण या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण से भिन्न है, पर मौलिक अधिकार के उल्लंघन का आरोप लगाया जा सकता है। यह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि इस न्यायालय को उन बिंदुओं पर निर्णय नहीं देना चाहिए जो उसके समक्ष उठाए गए प्रश्नों से संबंधित नहीं हैं और यही कारण है कि मैं इस पर पूरी तरह से विचार नहीं कर रहा हूँ और निश्चित रूप से इस पर कोई निश्चित राय व्यक्त नहीं कर रहा हूँ। हालाँकि, इनमें से कुछ भी कहे बिना, मैं ये टिप्पणियाँ करना उचित समझता हूँ। आमने-सामने के विचाराधीन वादों में पक्षकारों के अधिकारों पर निर्णय देने वाले न्यायालयों और उच्च न्यायालयों तथा इस न्यायालय द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह जाँच करने के लिए बनाए गए अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों के बीच कोई ठोस समानता नहीं है, जिन्हें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी जाँचना है कि क्या किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है और उन्हें संरक्षित करने की शक्ति प्राप्त है, और अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण, जो विशेष क़ानूनों के तहत बनाए गए हैं और उनके प्रावधानों को लागू करने और प्रशासित करने के लिए। मैं इस विषय को यहीं समाप्त करने में संतुष्ट हूँ।"

श्रीमती उज्जम बाई बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (सुप्रा) में लिए गए दृष्टिकोण पर ध्यान दिया गया कि न्यायालयों के न्यायिक आदेश अर्ध-न्यायिक आदेश या वैधानिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों के मुकाबले अलग-अलग आधार पर खड़े होते हैं।

42. राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में, नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संविधान पीठ के फैसले पर भी निर्भरता रखी गई थी ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि न्यायिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालयों के आदेश या कहें कि सिविल अदालतों के आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं। यह इस प्रकार देखा गया था:

"13. मिराजकर मामले में नौ न्यायाधीशों की पीठ के फैसले में, उच्च न्यायालय के एक न्यायिक आदेश को मौलिक अधिकार का उल्लंघन बताते हुए चुनौती दी गई थी। इस न्यायालय ने बहुमत से यह निर्णय दिया कि किसी सक्षम न्यायालय का न्यायिक आदेश मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं कर सकता। यदि आकस्मिक उल्लंघन हुआ भी हो, तो उसे मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं माना जा सकता। ....."

43. नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में की गई प्रासंगिक टिप्पणियां, जो न्यायिक आदेशों के खिलाफ उत्प्रेषण रिट के दायरे के प्रश्न पर इंग्लैंड में कानूनी स्थिति से संबंधित थीं, जैसा कि इसके पैरा 63 में निहित है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में भी नीचे दिए अनुसार नोट की गई थीं:

"16. इसके बाद, इस न्यायालय ने न्यायिक आदेशों के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट के दायरे के प्रश्न पर इंग्लैंड में कानूनी स्थिति पर विचार किया। यह देखते हुए कि उत्प्रेषण रिट न्यायिक आदेशों के विरुद्ध नहीं है, यह टिप्पणी की गई (मिराजकर का मामला, एआईआर पृष्ठ 18-19, अनुच्छेद 63-64)

"63. जब हम इस मामले के इस पहलू पर विचार कर रहे हैं, तो हम संयोग से इस मुद्दे पर हेल्सबरी द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियों का उल्लेख कर सकते हैं। हेल्सबरी पृष्ठ 11 में कहते हैं, 'सिविल क्षेत्राधिकार वाले निचले न्यायालयों के निर्णयों के मामले में-

'यह सुझाव दिया गया है कि अधिकार क्षेत्र के अभाव में उन्हें रद्द करने के लिए उत्प्रेषण आदेश दिया जा सकता है (केम्प बनाम बाल्ने (1844) 1 डॉवं एंड एल 885, डॉवं एंड एल पृष्ठ 887 पर), क्योंकि उस आधार पर कोई त्रुटि नहीं थी। लेकिन ऐसा कोई मामला दर्ज नहीं है जिसमें नागरिक अधिकार क्षेत्र वाली किसी निचली अदालत के फैसले को उत्प्रेषण आदेश के आधार पर, अधिकार क्षेत्र के अभाव में या किसी अन्य आधार पर रद्द कर दिया गया हो (हेल्सबरी लॉज़ ऑफ इंग्लैंड, तीसरा संस्करण, खंड 11, पृष्ठ 129)'। अंतिम प्रस्ताव इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है: 'सिविल अधिकार क्षेत्र वाली निचली अदालतों के फैसलों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण आदेश लागू नहीं होता। इन टिप्पणियों से संकेत मिलता है कि इंग्लैंड में पूर्ण अधिकार क्षेत्र वाली सिविल अदालतों द्वारा उनके समक्ष लाए गए मामलों में या उनके संबंध में पारित न्यायिक आदेशों को उत्प्रेषण आदेश जारी करने के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत नहीं माना जाता है।

इस प्रस्ताव में प्रासंगिक रूप से उल्लेख किया गया है कि उत्प्रेषण आदेश, सिविल क्षेत्राधिकार वाले अवर न्यायालयों के निर्णयों को रद्द करने के लिए नहीं है, जिसका अर्थ यह है कि पूर्ण क्षेत्राधिकार वाले सिविल न्यायालयों द्वारा उनके समक्ष लाए गए मामलों में या उनके संबंध में पारित न्यायिक आदेश उत्प्रेषण आदेश जारी करने के क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं माने जाते हैं।

44. नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (सुप्रा) मामले में रेक्स बनाम सेंट एडमंड्सबरी एवं इप्सविच डायोसीज़ के चांसलर, एक्स पार्टे व्हाइट[29] मामले में दिए गए निर्णय के संदर्भ में की गई एक अन्य टिप्पणी का उल्लेख राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) मामले में भी किया गया था। इस संबंध में की गई टिप्पणियाँ निम्नलिखित थीं:

"64. आर बनाम सेंट एडमंड्सबरी और इप्सविच डायोसीज़ के चांसलर, एक्स पार्टे व्हाइट के मामले में, जो प्रश्न उठा था वह यह था कि क्या उत्प्रेषण आदेश किसी बिशप के न्यायालय से एक चर्च संबंधी न्यायालय में लागू होगा; और न्यायालय द्वारा दिया गया उत्तर यह था कि उत्प्रेषण आदेश चर्च संबंधी न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध लागू नहीं होगा। ....."[12]

45. नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (सुप्रा) मामले में संविधान पीठ के फैसले पर विचार करने के बाद, राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की बड़ी पीठ ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

"18. जबकि उपरोक्त निर्णयों में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या न्यायिक आदेश मौलिक अधिकार का उल्लंघन कर सकता है, यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था कि न्यायिक आदेशों को चुनौती अपीलीय या पुनरीक्षण के माध्यम से या अनुच्छेद 227 के तहत दी जा सकती है, न कि अनुच्छेद 226 और 32 के तहत रिट के माध्यम से।"

46. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कमलेश्वरी प्रसाद बनाम सूरज नारायण[30] मामले में दिए गए पूर्व निर्णय का भी हवाला दिया गया, जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया था कि सिविल न्यायालय के आदेश को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत नहीं, बल्कि अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है। प्रासंगिक टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं[13]

"20. इस न्यायालय ने कमलेश्वरी बनाम सूरज नारायण मामले में दिनांक 6-2-1989 के निर्णय में, जैसा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के गंगा सरन बनाम सिविल जज, हापुड़ 1991 एसीसी ऑनलाइन ऑल 63 मामले में दिए गए निर्णय में उद्धृत किया गया है, सिविल न्यायालय के अंतरिम आदेश के विरुद्ध उत्प्रेषण और परमादेश रिट के मुद्दे पर विचार किया और कहा: (कमलेश्वरी मामला, एडब्ल्यूसी पृष्ठ 309, पैरा 4)

[12]29 1945-1 केबी 195

[13]30 (1990) 1 एडब्ल्यूसी 308 (एससी)

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

> "4. ... यदि निषेधाज्ञा का आदेश उस मामले में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किया जाता है तो संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के लिए उत्प्रेषण रिट जारी करके उसे रद्द करना अनुमेय नहीं है। इस मामले में, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश यह समझने में भी विफल रहे कि इस मामले में परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती। किसी निजी व्यक्ति को परमादेश रिट तब तक जारी नहीं की जा सकती जब तक कि उस पर सार्वजनिक कर्तव्य निभाने का वैधानिक दायित्व न हो। इस मामले में विवाद पूरी तरह से दो निजी पक्षों के बीच था, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत परमादेश रिट का विषय नहीं हो सकता था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को प्रदत्त रिट क्षेत्राधिकार के इस मूल सिद्धांत की अनदेखी की। उत्प्रेषण रिट या परमादेश रिट जारी करने का कोई कारण या औचित्य नहीं था। उच्च न्यायालय ने जिला न्यायाधीश के आदेश में हस्तक्षेप करके क्षेत्राधिकार की गंभीर त्रुटि की।"

21. इस प्रकार, इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि सिविल न्यायालय के आदेशों को अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है, अनुच्छेद 226 के तहत नहीं।

47. अंततः, राधे श्याम व अन्य बनाम छबि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में निर्धारित कानून को इस सीमा तक खारिज करते हुए कि सिविल कोर्ट के आदेश उत्प्रेषण रिट के अधीन हैं, यह निष्कर्ष निकाला गया:

> **25**. यह सत्य है कि इस न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि इंग्लैंड में विशेषाधिकार प्राप्त रिटों से जुड़ी तकनीकी बातों का हमारी संवैधानिक व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है। भारत में किंग्स कोर्ट और किंग्स कोर्ट के पर्यवेक्षण के अधीन सीमित अधिकार क्षेत्र वाले अवर सभी न्यायालयों की कोई समानांतर व्यवस्था नहीं है। न्यायालय संविधान या कानूनों के अधीन स्थापित किए जाते हैं। उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आने वाले सभी न्यायालय अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उसके अधीनस्थ और उसके नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण के अधीन होते हैं। रिट अधिकार क्षेत्र संवैधानिक रूप से सभी उच्च न्यायालयों को प्रदान किया गया है। इंग्लैंड में अपनाए गए रिट अधिकार क्षेत्र के व्यापक सिद्धांत भारत पर भी लागू होते हैं और न्यायिक न्यायालयों के अलावा अन्य न्यायाधिकरणों, प्राधिकारियों या न्यायालयों के स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण या अधिकार क्षेत्र विहीन आदेशों के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट लागू होते हैं। भारत में उच्च न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को रिट जारी करने का कोई पूर्व उदाहरण नहीं है। अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायिक आदेशों के विरुद्ध बाद में उनके कार्य पर नियंत्रण अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अपीलीय या पुनरीक्षण शक्तियों या अधीक्षण शक्तियों द्वारा किया जाता है। सिविल न्यायालय के आदेश न्यायिक सिविल न्यायालयों के अलावा अन्य प्राधिकारियों, न्यायाधिकरणों या न्यायालयों के आदेशों से भिन्न आधार पर खड़े होते हैं। जबकि अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार कानूनों द्वारा विनियमित होता है, अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति संवैधानिक है। "निम्न न्यायालय" शब्द न्यायिक न्यायालयों के लिए संदर्भित नहीं है जैसा कि ऊपर उद्धृत अनुच्छेद 226 और 227 में संदर्भित आदेशों में सही रूप से कहा गया है।
>
> **26**. ………………
>
> **27.** इस प्रकार, हमारा विचार है कि सिविल न्यायालयों के न्यायिक आदेश अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उत्प्रेषण रिट के अधीन नहीं हैं। हम संदर्भित पीठ के इस विचार से भी सहमत हैं कि परमादेश रिट किसी ऐसे निजी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं है जो कोई सार्वजनिक कर्तव्य नहीं निभा रहा है। अनुच्छेद 227 का क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 से भिन्न है।
>
> **28.** ………………..
>
> 29. तदनुसार, हम संदर्भित प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं:
>
> **29.1.** सिविल न्यायालयों के न्यायिक आदेश संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं।
>
> **29.2.** अनुच्छेद 227 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार से भिन्न है।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया।)

29.3. सूर्यदेव राय मामले में विपरीत दृष्टिकोण को खारिज किया जाता है।

48. इस प्रकार, विधि के न्यायिक विकास, जैसा कि हमने ऊपर सर्वेक्षण किया है, इस कानूनी स्थिति को स्थापित करता है कि जहाँ याचिकाएँ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के अंतर्गत दायर की जाती हैं और मामले के तथ्य उत्प्रेषण रिट जारी करने की माँग करते हुए याचिका दायर करने को उचित ठहराते हैं, वहाँ अर्ध-न्यायिक प्राधिकारियों और न्यायाधिकरणों द्वारा पारित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार के अधीन हैं, इस स्पष्टीकरण के साथ कि दीवानी न्यायालयों के न्यायिक आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं। इसलिए, जहाँ आदेश दीवानी न्यायालयों द्वारा पारित किए जाते हैं और अपील या पुनरीक्षण का कोई उपाय मौजूद नहीं है, वहाँ भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार लागू किया जा सकता है।

49. विचाराधीन मामले में, आदेश राजस्व न्यायालयों और राजस्व अपीलीय प्राधिकरण तथा राजस्व मंडल द्वारा अपनी अपीलीय और पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए पारित किए गए थे। राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेशों को सिविल न्यायालय द्वारा पारित आदेश कहा जा सकता है या नहीं, यह अंतिम मुद्दा है जिस पर हमें निर्णय लेना है। यदि राजस्व मंडल एक सिविल न्यायालय नहीं है जैसा कि ऊपर संदर्भित अनेक निर्णयों में माना गया है, तो उस स्थिति में जहाँ याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की जाती है और मामले के तथ्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत भी याचिका दायर करने को उचित ठहराते हैं और न्यायालय के उत्प्रेषण अधिकारिता का भी आह्वान किया जाता है, निश्चित रूप से, राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के तहत प्रदत्त अंतर-न्यायालय अपील पोषणीय होगी। दूसरी ओर, यदि यह माना जाता है कि विभिन्न कार्यवाहियों में पारित आदेशों या अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में राजस्व कार्यवाहियों से उत्पन्न सीधे मुकदमों में पारित आदेशों से उत्पन्न पुनरीक्षण या सीधे मुकदमों का निर्णय करते समय, राजस्व बोर्ड सिविल न्यायालय के रूप में कार्य करता है, तो इसका आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार के अधीन होगा और उस मामले में, याचिका अनिवार्य रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका होगी, जिसके खिलाफ अंतर-न्यायालय में सुनवाई योग्य नहीं होगी।

50. सामान्य न्यायिक प्रणाली के एक भाग के रूप में, सिविल न्यायालय, निजी नागरिक अधिकारों से संबंधित विवादों के निपटारे के लिए गठित और स्थापित न्यायालय हैं। सिविल न्यायालयों को व्यक्तियों के बीच निजी अधिकारों और दायित्वों का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र सौंपा गया है। सिविल न्यायालय पूर्ण अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय हैं, जो राज्य के कानूनों के तहत स्थापित होते हैं और संबंधित कानूनों और सीपीसी में निहित प्रावधानों द्वारा शासित होते हैं। राजस्थान राज्य में सिविल न्यायालय राजस्थान सिविल न्यायालय अध्यादेश, 1950 (जिसे आगे '1950 का अध्यादेश' कहा जाएगा) के तहत स्थापित किए गए हैं, जो सिविल न्यायालयों के गठन, उनके अधिकार क्षेत्र और अन्य आनुषंगिक प्रावधानों का प्रावधान करता है। सिविल न्यायालयों की पदानुक्रमिक संरचना 1950 के अध्यादेश की धारा 6 के तहत जिला न्यायालय, वरिष्ठ सिविल न्यायालय और सिविल न्यायाधीश/अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ श्रेणी) के न्यायालय और सिविल न्यायाधीश/अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ श्रेणी) के न्यायालय के रूप में प्रदान की गई है। 1950 के अध्यादेश के तहत बनाए गए क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाएं राज्य सरकार के पास हैं जैसा कि 1950 के अध्यादेश की धारा 7 में प्रावधान किया गया है। जबकि जिला न्यायाधीश की नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 233 के प्रावधानों द्वारा शासित होती है, अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ श्रेणी) और अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ श्रेणी) की नियुक्ति के संबंध में प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 234 के तहत प्रदान किए गए हैं। सिविल न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को 1950 के अध्यादेश के अध्याय III, धारा 18 से धारा 24 में प्रदान किया गया है। किसी भी राज्य में जिला न्यायाधीशों के रूप में व्यक्तियों की नियुक्ति और राज्य की न्यायिक सेवाओं में जिला न्यायाधीशों के अलावा अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति उस राज्य के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के परामर्श से उस राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है। राज्यपाल द्वारा तैयार किए गए भर्ती नियम जिला न्यायाधीश और जिला न्यायाधीश के अलावा अन्य न्यायाधीशों के रूप में किसी व्यक्ति की भर्ती और नियुक्ति को विनियमित करते हैं। 1950 के अध्यादेश के तहत जिला न्यायालयों के रूप में गठित न्यायालय और उनके अधीनस्थ न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत प्रावधान के अनुसार, उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन हैं।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

सिविल न्यायालयों में न्यायिक अधिकारी कार्यरत होते हैं, जिनकी भर्ती भारत के संविधान के अनुच्छेद 233 और 234 में निहित प्रावधानों के अनुसार की जाती है, जिन्हें उच्च न्यायालय के परामर्श से संबंधित राज्यों के राज्यपाल द्वारा तैयार किए गए प्रासंगिक भर्ती नियमों के साथ पढ़ा जाता है।

51. जिला न्यायाधीश का न्यायालय और उसके अधीनस्थ अन्य न्यायालय, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 236 में उल्लिखित विभिन्न पदनामों के नामकरण के अंतर्गत राज्य के सिविल न्यायालयों का गठन करते हैं। सिविल न्यायालयों में ऊपर निर्धारित तरीके से नियुक्त न्यायिक अधिकारी कार्यरत होते हैं।

52. जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह सर्वमान्य है कि सिविल न्यायालय या सिविल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय सी.पी.सी. की धारा 9 के तहत प्रदत्त पूर्ण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं, जो इस प्रकार है

> "**9.** न्यायालयों द्वारा सभी सिविल वादों पर विचारण किया जाएगा, जब तक कि उन पर रोक न लगाई गई हो।— न्यायालयों को (इसमें निहित उपबंधों के अधीन रहते हुए) सिविल प्रकृति के सभी वादों पर विचारण करने का अधिकार होगा, सिवाय उन वादों के जिनका संज्ञान स्पष्टतः या निहित रूप से वर्जित है।
>
> [स्पष्टीकरण I]—ऐसा वाद जिसमें संपत्ति या किसी पद के अधिकार पर विवाद हो, सिविल प्रकृति का वाद है, भले ही ऐसा अधिकार पूरी तरह से धार्मिक अनुष्ठानों या समारोहों से संबंधित प्रश्नों के निर्णय पर निर्भर हो।
>
> [स्पष्टीकरण II]—इस धारा के प्रयोजनों के लिए, यह महत्वहीन है कि स्पष्टीकरण I में निर्दिष्ट पद के लिए कोई शुल्क देय है या नहीं या ऐसा पद किसी विशिष्ट स्थान के लिए देय है या नहीं।]"

53. इस प्रकार, सिविल न्यायालयों को सिविल प्रकृति के सभी वादों पर विचारण करने का अधिकार है, सिवाय उन वादों के जिनका संज्ञान स्पष्टतः या निहित रूप से वर्जित है। इस प्रकार, जहाँ अधिकारिता स्पष्टतः या निहित रूप से वर्जित है, वहाँ को छोड़कर, सिविल न्यायालय सिविल प्रकृति के सभी विवादों पर विचारण करने के लिए पूर्ण अधिकारिता का प्रयोग करते हैं।

54. राजस्थान राज्य में राजस्व मंडल की स्थापना राजस्थान राजस्व मंडल अध्यादेश, 1949 (जिसे आगे 'राजस्थान राजस्व मंडल अध्यादेश' कहा जाएगा) के अंतर्गत की गई थी। राजस्थान राजस्व मंडल अध्यादेश की धारा 3 में राजस्थान के लिए राजस्व मंडल की स्थापना का प्रावधान था, जबकि धारा 4 में निहित प्रावधानों में राजस्व मंडल की संरचना का प्रावधान था। उपरोक्त अध्यादेश की धारा 5 में बैंक और पूर्णाधिकार का प्रावधान था। धारा 6 में सदस्यों के कार्यकाल की बात की गई है। धारा 7 में बैठक के स्थान का प्रावधान है। धारा 8 में राजस्व मंडल की मुहर का प्रावधान है। धारा 9 में सम्मन आदि की मुहर लगाने का प्रावधान है। धारा 11 में राजस्व मंडल की शक्तियों का उल्लेख है। यह घोषणा करती है कि संपूर्ण राजस्थान या उसके किसी भाग में तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष कानून के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, राजस्व मंडल राजस्थान में अपील, पुनरीक्षण और संदर्भ का सर्वोच्च राजस्व न्यायालय होगा। राजस्थान राजस्व बोर्ड अध्यादेश की धारा 12 के अंतर्गत अन्य सभी राजस्व न्यायालयों और अधिकारियों पर सामान्य अधीक्षण और नियंत्रण की शक्ति प्रदान की गई है, जो घोषित करती है कि ऐसे सभी न्यायालय और अधिकारी राजस्व बोर्ड के अधीनस्थ होंगे। धारा 13 राजस्व बोर्ड के अधिकार क्षेत्र का प्रावधान करती है। धारा 14 किसी न्यायपीठ को संदर्भित करने की शक्ति प्रदान करती है और धारा 15 विधि के प्रश्नों को उच्च न्यायालय को संदर्भित करने की शक्ति से संबंधित है। राजस्व बोर्ड को धारा 18 के अंतर्गत नियम बनाने की शक्ति भी प्रदान की गई है। राजस्थान राजस्व न्यायालय (पदनाम) अध्यादेश, 1949 में कुछ राजस्व न्यायालयों के पदनाम में परिवर्तन करने के प्रावधान हैं। यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि 1955 के अधिनियम के अधिनियमन से पूर्व, राजस्थान में राजस्व न्यायालयों और अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र और प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए राजस्थान राजस्व न्यायालय (प्रक्रिया और अधिकार क्षेत्र) अधिनियम, 1951 अधिनियमित किया गया था, जिसे 1955 के अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया गया है और इसे 1955 के अधिनियम की धारा 3, उप-धारा (1) के संदर्भ में, अधिनियमों की सूची शीर्षक के अंतर्गत 1955 के अधिनियम से संलग्न प्रथम अनुसूची में शामिल किया गया है।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

55. राजस्व न्यायालयों के गठन का प्रावधान संबंधित राज्यों द्वारा बनाए गए राजस्व कानूनों के तहत किया गया है, विशेष रूप से राजस्थान राज्य में दो प्रमुख राजस्व कानूनों, अर्थात् राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 और राजस्थान भूमि राजस्व अधिनियम, 1956 के तहत। 1955 के अधिनियम की धारा 5 की उप धारा (35) राजस्व न्यायालय को निम्नानुसार परिभाषित करती है

"5. परिभाषाएँ- इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो-

"(35) "**राजस्व न्यायालय" से ऐसा न्यायालय या अधिकारी अभिप्रेत होगा जिसे कृषि काश्तकारों, लगान और भूमिधारियों की भूमि में किसी अधिकार या हित से संबंधित अन्य मामलों से संबंधित वादों या अन्य कार्यवाहियों को ग्रहण करने का अधिकार हो, जिसमें ऐसे न्यायालय या अधिकारी से न्यायिक रूप से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, इसमें बोर्ड और उसका प्रत्येक सदस्य, राजस्व अपील प्राधिकारी, कलेक्टर, उपखंड अधिकारी, सहायक कलेक्टर, तहसीलदार या ऐसा कार्य करते समय कोई अन्य राजस्व अधिकारी शामिल होगा।**"

56. **राजस्व न्यायालय की परिभाषा में न्यायालय के साथ-साथ अधिकारी भी शामिल हैं, जो इसमें उपबंधित कुछ राजस्व मामलों से संबंधित मुकदमों या अन्य कार्यवाहियों पर विचार करने के लिए अधिकारिता का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त, परिभाषा खंड स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि ऐसे न्यायालय या अधिकारी को न्यायिक रूप से कार्य करना आवश्यक है और इसमें बोर्ड और बोर्ड का प्रत्येक सदस्य, राजस्व अपील प्राधिकारी और अन्य प्रकार के राजस्व अधिकारी शामिल हैं जो परिभाषा खंड में उल्लिखित विभिन्न विषयों से संबंधित कार्यवाहियों के संबंध में न्यायिक रूप से कार्य करते हैं। चूँकि राजस्व बोर्ड की स्थापना राजस्थान राजस्व बोर्ड अध्यादेश,** 1949 **द्वारा शासित होती है, इसलिए** 1955 **के अधिनियम में राजस्व न्यायालयों की स्थापना के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है। हालाँकि,** 1955 **के अधिनियम के अध्याय** XV **में निहित प्रावधान राजस्व न्यायालयों की प्रक्रिया और अधिकारिता को शासित करते हैं। जबकि** 1955 **के अधिनियम की धारा** 206 **लंबित मामलों के लिए प्रावधान करती है, धारा** 207 **स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि अनुसूची** III **में निर्दिष्ट प्रकृति के सभी मुकदमों और आवेदनों की सुनवाई और निर्धारण राजस्व न्यायालय द्वारा किया जाएगा और यह सिविल न्यायालयों सहित अन्य सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को भी स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करके रोकती है कि राजस्व न्यायालय के अलावा कोई अन्य न्यायालय ऐसे किसी वाद या आवेदन या कार्रवाई के कारण के आधार पर किसी ऐसे वाद या आवेदन का संज्ञान नहीं लेगा जिसके संबंध में ऐसे किसी वाद या आवेदन के माध्यम से कोई राहत प्राप्त की जा सकती है।** 1955 **के अधिनियम की धारा** 208 **सिविल प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता के लिए उस सीमा तक प्रावधान करती है, जो** 1955 **के अधिनियम में निहित किसी भी बात के असंगत नहीं है।** 1955 **के अधिनियम की धारा** 208 **इस प्रकार है**

"208. सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुप्रयोग—सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (**केन्द्रीय अधिनियम** 5, 1908) **के उपबंध, सिवाय**

(**क) इस अधिनियम की किसी बात से असंगत उपबंध, जहाँ तक असंगति का विस्तार है।**

(**ख) इस अधिनियम के दायरे से बाहर केवल विशेष वादों या कार्यवाहियों पर लागू उपबंध, और**

(**ग) चौथी अनुसूची की सूची** 1 **में निहित उपबंध, चौथी अनुसूची की सूची** 2 **में निहित संशोधनों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के अधीन सभी वादों और कार्यवाहियों पर लागू होंगे।"**

57. 1955 **के अधिनियम की धारा** 218 **राजस्व न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों का प्रावधान करती है।** 1955 **के अधिनियम की धारा** 221 **में प्रावधान है कि सभी राजस्व न्यायालयों पर सामान्य अधीक्षण और नियंत्रण राजस्व बोर्ड में निहित होगा और ऐसे सभी न्यायालय राजस्व बोर्ड के अधीनस्थ होंगे। ऐसे अधीक्षण, नियंत्रण और अधीनता के अधीन,** 1955 **के अधिनियम की धारा** 222 **से** 228 **के प्रावधानों के तहत अपीलीय न्यायालयों का पदानुक्रम प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त,** 1955 **के अधिनियम की धारा** 229 **और** 230 **के तहत समीक्षा और पुनरीक्षण की शक्तियाँ भी प्रदान की गई हैं, जो** 1955 **के अधिनियम की धारा** 230-**ए**

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया।)

के तहत प्रदत्त प्रतिबंधों के अधीन हैं। 1955 के अधिनियम की धारा 231 उच्च न्यायालय को मामलों को मंगाने की शक्ति प्रदान करती है, जबकि 1955 के अधिनियम की धारा 232 कलेक्टर को संदर्भ देने की शक्ति प्रदान करती है।

58. 1955 के अधिनियम के अध्याय VIII में घोषणात्मक वादों के संबंध में प्रावधान हैं और घोषणात्मक वाद की विषय वस्तु 1955 के अधिनियम की धारा 88 से धारा 92 में निहित है।

59. 1955 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम की योजना के तहत, जबकि राजस्व मुकदमों में कुछ प्रकृति के विवादों और कुछ अधिकारों के दावों का राजस्व न्यायालयों द्वारा न्यायनिर्णयन किया जाना आवश्यक है, राजस्व कानूनों में प्रदत्त अन्य मामलों से संबंधित शक्तियों का प्रयोग राजस्व अधिकारियों द्वारा किया जाता है, उदाहरण के लिए, दाखिल खारिज की कार्यवाही। उन मामलों में भी, दोनों अधिनियमों की योजना राजस्व बोर्ड तक अपील और पुनरीक्षण का प्रावधान करती है।

60. राजस्व बोर्ड, राज्य का सर्वोच्च राजस्व न्यायालय होने के नाते, राजस्व मुकदमों में पारित राजस्व न्यायालयों के आदेशों से उत्पन्न मामलों में द्वितीय अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करता है। यह राजस्व न्यायालयों द्वारा राजस्व मुकदमों के रूप में निर्धारित किए जाने योग्य विवादों के अलावा अन्य विवादों से उत्पन्न मामलों में, जैसा भी मामला हो, संदर्भ न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य करता है।

61. राजस्व न्यायालयों को वास्तव में कोई पूर्ण अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं है, बल्कि भूमि, कृषि संपत्ति, भू-राजस्व संग्रहण, काश्तकारी अधिकार और काश्तकारी अधिकार तथा उनसे उत्पन्न होने वाले अन्य विवादों से संबंधित कुछ मामलों को निपटाने के लिए राजस्व न्यायालयों के रूप में गठित किया जाता है। इस प्रकार, राजस्व न्यायालय राजस्व कानूनों के अंतर्गत प्रदत्त मामलों पर विचार करते हैं और इसलिए, सभी राजस्व न्यायालयों और राजस्व प्राधिकारियों का यह दायित्व है कि वे राजस्व कानूनों के अंतर्गत प्रदत्त विवादों या मामलों के निर्धारण के मामले में न्यायिक कार्य करने वाले विशेष न्यायालयों या अर्ध-न्यायिक या न्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले न्यायाधिकरणों के रूप में न्यायिक रूप से कार्य करें। इसलिए, राजस्व न्यायालय पूर्ण अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय नहीं हैं, बल्कि विनिर्दिष्ट मामलों से निपटने के लिए विशेष न्यायालय हैं।

62. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 1955 के अधिनियम की धारा 207 उन मामलों के संबंध में सिविल न्यायालयों सहित अन्य सभी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाती है जिनमें राजस्व न्यायालयों द्वारा संज्ञान लिया जा सकता है। 1955 के अधिनियम की धारा 239 में निहित प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रदान करते हैं कि जब किसी राजस्व मुकदमे में किसी मालिकाना अधिकार के संबंध में कोई विवाद विचारार्थ उत्पन्न होता है, तो राजस्व न्यायालय मालिकाना अधिकारों से संबंधित मुद्दे को तैयार करने और सिविल न्यायालय के न्यायनिर्णयन के लिए संदर्भित करने के लिए बाध्य है और फिर सिविल न्यायालय को उस मुद्दे पर निर्णय देने और राजस्व न्यायालय को निष्कर्ष वापस करने का अधिकार क्षेत्र है, जिसके आधार पर राजस्व न्यायालय मुकदमे का फैसला करने के लिए आगे बढ़ सकता है। 1955 के अधिनियम की धारा 242 के तहत यह भी प्रावधान किया गया है कि जहां किसी सिविल मुकदमे की सुनवाई के दौरान किरायेदारी के अधिकार का कोई प्रश्न उठता है, सिविल न्यायालय उस मुद्दे को राजस्व न्यायालय के निर्धारण के लिए संदर्भित करेगा और उस मामले पर राजस्व न्यायालय द्वारा निष्कर्ष वापस करने के बाद, सिविल न्यायालय मुकदमे का फैसला करने के लिए आगे बढ़ेगा।

उपर्युक्त प्रावधान सिविल न्यायालयों और राजस्व न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में स्पष्ट रूप से अंतर और विभाजन करते हैं। हालाँकि, स्पष्ट अंतर यह है कि राजस्व न्यायालय केवल उन्हीं मामलों पर निर्णय देते हैं जो विशेष कानून, अर्थात् राजस्व कानूनों के अंतर्गत प्रदान किए जाते हैं, जबकि सिविल न्यायालय पूर्ण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हैं, जब तक कि किसी विशेष मामले या विवाद के संबंध में उनके अधिकार क्षेत्र पर स्पष्ट रूप से या कानून के आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रतिबंध न लगाया गया हो।

63. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 5 राजस्व न्यायालयों पर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के लागू होने का प्रावधान करती है, जो इस प्रकार है

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

> **"5. राजस्व न्यायालयों पर संहिता का लागू होना.-**(1) **जहां कोई राजस्व न्यायालय प्रकृति के उन मामलों में इस संहिता के प्रावधानों द्वारा शासित होते हैं जिन पर उस पर लागू कोई विशेष अधिनियम मौन है, राज्य सरकार** [***] **अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उन प्रावधानों के कोई भी भाग जो इस संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से लागू नहीं किए जाते हैं, उन न्यायालयों पर लागू नहीं होंगे, या केवल उन पर ऐसे संशोधनों के साथ लागू होंगे जो राज्य सरकार** [***] **निर्धारित कर सकती है।**
>
> (2) **उपधारा** (1) **में "राजस्व न्यायालय" से ऐसा न्यायालय अभिप्रेत है, जिसे कृषि प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि के किराए, राजस्व या लाभ से संबंधित वादों या अन्य कार्यवाहियों को ग्रहण करने के लिए किसी स्थानीय विधि के अधीन अधिकारिता प्राप्त है, किन्तु इसमें ऐसा सिविल न्यायालय सम्मिलित नहीं है, जिसे इस संहिता के अधीन ऐसे वादों या कार्यवाहियों को सिविल प्रकृति के वादों या कार्यवाहियों के रूप में विचारण करने का आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है।"**

64. **उपर्युक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि सीपीसी के प्रावधानों की प्रयोज्यता उपरोक्त उप धारा** (1) **में निहित प्रावधानों द्वारा शासित होती है। इसके अलावा, राजस्व न्यायालय को किसी स्थानीय कानून के तहत भूमि राजस्व या कृषि उद्देश्यों के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि की आय से संबंधित वाद या अन्य कार्यवाहियों पर विचार करने के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले न्यायालय के रूप में भी परिभाषित किया गया है, लेकिन इसमें सीपीसी के तहत ऐसे वादों या कार्यवाहियों को सिविल प्रकृति के वाद या कार्यवाही के रूप में सुनने का मूल अधिकार क्षेत्र रखने वाला सिविल न्यायालय शामिल नहीं है।**

65. **इसलिए, न्यायिक प्रणाली को सिविल न्यायालयों और राजस्व न्यायालयों के बीच अंतर करके वर्गीकृत किया जाता है। वास्तव में, न्यायिक प्रणाली इस तरह से संरचित है कि विभिन्न न्यायालयों को विभिन्न प्रकार के मामलों पर अलग-अलग अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है और न्यायालयों के ऐसे वर्गीकरण के अलावा, विभिन्न कानूनों के तहत गठित सिविल न्यायालय और राजस्व न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का अलग-अलग प्रयोग करते हैं, अपने-अपने अधिनियमों और सीपीसी के तहत अपील, पुनरीक्षण और समीक्षा से संबंधित अपनी प्रक्रियाओं और प्रावधानों को नियंत्रित और विनियमित करते हैं।**

66. **राजस्व न्यायालयों और सिविल न्यायालयों के बीच एक प्रमुख अंतर यह है कि जहाँ सिविल न्यायालय सामान्य न्याय प्रदान करने की प्रणाली का हिस्सा होते हैं, वहीं राजस्व न्यायालय केवल राजस्व कानूनों से संबंधित विशेष मामलों पर ही विचार करते हैं। दूसरी महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि सिविल न्यायालय न्यायिक न्यायालय होते हैं जहाँ न्यायिक शक्तियों का प्रयोग किया जाता है और जिनमें न्यायिक अधिकारी कार्यरत होते हैं, जिनकी नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद** 233 **और** 234 **में निहित प्रावधानों और उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्यपाल द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार की जाती है। राजस्व न्यायालयों में संविधान के अनुच्छेद** 233 **और** 234 **के तहत नियुक्त न्यायिक अधिकारी नहीं, बल्कि राज्य कार्यकारी और प्रशासनिक सेवाओं से संबंधित राजस्व अधिकारी कार्यरत होते हैं। जहाँ सभी जिला न्यायालय और उनके अधीनस्थ न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद** 235 **के तहत उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन हैं, वहीं सभी राजस्व न्यायालय राजस्व बोर्ड के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के अधीन हैं।**

यह अलग बात है कि सभी न्यायालय या न्यायाधिकरण, जिनमें अनिवार्यतः राजस्व न्यायालय और राजस्व बोर्ड शामिल हैं, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 **के तहत प्रदत्त उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के अधीन हैं।**

67. **हमारे समक्ष यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि चूँकि राजस्व न्यायालय और राजस्व बोर्ड सर्वोच्च राजस्व अपीलीय न्यायालय हैं, इसलिए वे दीवानी न्यायालय हैं। केवल इसलिए कि वे न्यायिक कार्य करते हैं या न्यायालय के रूप में गठित हैं और राजस्व वादों का निर्णय करते हैं, यह तर्क ऊपर दिए गए विस्तृत विचार के आलोक में स्वीकार्य नहीं है। अब हम इस संबंध में प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा बार में उद्धृत कुछ निर्णयों पर विचार करेंगे।**

68. **प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इथियोपियन एयरलाइंस बनाम गणेश नारायण सबू (सुप्रा) मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है। राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग, नई दिल्ली के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील के मामले में, इस प्रश्न पर परस्पर विरोधी निर्णयों के मद्देनजर कि क्या उपभोक्ता फोरम**

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

के समक्ष कार्यवाही वाद है, वृहद पीठ को संदर्भित किया गया था। आयोग के अधिकार क्षेत्र, शक्तियों और प्रक्रियाओं के संबंध में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में निहित प्रावधानों और साथ ही सीपीसी में निहित प्रावधानों का व्यापक रूप से उल्लेख करने के बाद, "वाद" शब्द को न्यायालय अवमान अधिनियम, 1972 और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत परिभाषित नहीं किया गया है, यह माना गया कि "वाद" शब्द को इसके सामान्य शब्दकोशीय अर्थ में समझा जाना चाहिए और इस अर्थ में, यह एक सामान्य शब्द है जो किसी पक्ष द्वारा कानून के तहत अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए शुरू की गई सभी कार्यवाहियों को अपने दायरे में लेता है। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

"59. न्यायालय द्वारा परिसीमन अधिनियम, 1972 में "वाद" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है और न ही उक्त अधिनियम में यह प्रावधान है कि "वाद" शब्द का वही अर्थ होगा जो सिविल प्रक्रिया संहिता में है। इसलिए, "वाद" शब्द को उसके सामान्य शब्दकोशीय अर्थ में ही समझा होगा। इस अर्थ में, "वाद" शब्द एक सामान्य शब्द है, जो किसी पक्ष द्वारा विधि द्वारा प्रदत्त अधिकार की प्राप्ति के लिए शुरू की गई सभी कार्यवाहियों को अपने दायरे में लेता है। इस दृष्टिकोण से, हमें "वाद" शब्द के शब्दकोशीय अर्थ को देखना होगा।"

शब्द "सूट" का शब्दकोशीय अर्थ भी नीचे बताया गया है:

60. ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी के अनुसार, "वाद" शब्द का अर्थ है "किसी व्यक्ति या पक्ष द्वारा किसी अन्य पक्ष के विरुद्ध न्यायालय में की गई कोई कार्यवाही"। सामान्य बोलचाल में, "वाद" शब्द में न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रकृति की सभी कार्यवाहियाँ शामिल होती हैं जिनमें पीड़ित पक्ष के शिकायत का निवारण एक निष्पक्ष मंच के समक्ष किया जाता है। उपभोक्ता मंच के समक्ष की जाने वाली कार्यवाहियाँ पूरी तरह से इसी परिभाषा के अंतर्गत आती हैं।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मामले में "सूट" शब्द के अर्थ के संबंध में कुछ निर्णयों का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:

"61. पटेल रोडवेज लिमिटेड बनाम बिरला यामाहा लिमिटेड (2000) 4 एससीसी 91 में यह माना गया है कि उपभोक्ता मंचों के समक्ष कार्यवाही "वाद" शब्द के दायरे में आती है। इस निर्णय को इस न्यायालय की संविधान पीठ ने इकोनॉमिक ट्रांसपोर्ट ऑर्गनाइजेशन बनाम चरण स्पिनिंग मिल्स (प्रा.) लिमिटेड (2010) 4 एससीसी 114 में अनुमोदित किया है। अतः, इस मामले से संबंधित विवाद अंतिम रूप से सुलझ गया है और हम संविधान पीठ के निर्णय से बंधे हैं और इस मामले पर संविधान पीठ द्वारा इकोनॉमिक ट्रांसपोर्ट ऑर्गनाइजेशन में दिए गए निर्णय के अनुसार ही निर्णय लिया जाना है।

62. इसी प्रकार, अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने "वाद" शब्द को व्यापक रूप से परिभाषित किया है और पाया है कि "वाद" "न्यायालय में कोई भी कार्यवाही है, जिसके द्वारा [कोई व्यक्ति] न्यायालय में उस उपाय का अनुसरण करता है जो कानून उसे प्रदान करता है," देखें वेस्टन बनाम चार्ल्सटन शहर, 27 यू.एस. 449 (1829); यह भी देखें एडम्स बनाम वुड्स 34 एल एड 196। इसी प्रकार (एलएड पृष्ठ 199)

"... '...कार्यवाही के तरीके अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन अगर किसी पक्षकार के बीच न्यायालय में किसी अधिकार के लिए मुकदमा चल रहा है, तो वह कार्यवाही जिसके द्वारा न्यायालय का निर्णय प्राप्त किया जाता है, वाद कहलाती है।*"

63. मिशिगन सुप्रीम कोर्ट ने इसी तरह पाया कि "कानूनी पेशे और अन्य लोगों द्वारा कानूनी कार्यवाही के लिए प्रयुक्त वाद शब्द अब व्यापक महत्व के एक सामान्य शब्द के रूप में प्रयोग और मान्यता प्राप्त है, जिसे अक्सर विधायिकाओं और न्यायालयों द्वारा भी लागू किया जाता है किसी भी कार्यवाही के लिए समझा और प्रयोग किया जाता है।' (देखें पैटरसन बनाम स्टैंडर्ड एक्सीडेंट इंश्योरेंस कंपनी, 178 मिशिगन, 288)"

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया।)

69. यह मानते हुए कि राष्ट्रीय उपभोक्ता फोरम के समक्ष कार्यवाही वाद की प्रकृति की है, घोषित कानून यह था कि वाद एक सामान्य शब्द है जो किसी पक्षकार द्वारा कानून में निहित अधिकार की प्राप्ति के लिए शुरू की गई सभी कार्यवाहियों को अपने दायरे में लेता है और इसके अलावा सामान्य बोलचाल में, "वाद" शब्द में न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रकृति की सभी कार्यवाहियां शामिल हैं, जिसमें पीड़ित पक्ष की शिकायत का निष्पक्ष फोरम के समक्ष न्यायनिर्णयन किया जाता है।

70. महत्वपूर्ण बात यह है कि सीपीसी की धारा 2 में निहित प्रावधानों का हवाला देते हुए यह माना गया कि सीपीसी में "अदालत" शब्द विशेष रूप से सिविल अदालतों को संदर्भित करता है और इसलिए, उपभोक्ता निवारण निकाय जैसे अन्य अर्ध-न्यायिक निकाय सीपीसी की धारा 2 के तहत प्रयुक्त "अदालत" शब्द के दायरे से बाहर आते हैं।

इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि केवल इसलिए कि राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के समक्ष कार्यवाही को मुकदमे की प्रकृति का माना गया था, फिर भी इसे अदालत नहीं माना गया।

71. ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य (सुप्रा) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न विचारार्थ उठा कि क्या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग एक न्यायालय है। निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियाँ की गईं:

> "**49.** टी.एन. राज्य बनाम जी.एन. वेंकटस्वामी मामले में, इस न्यायालय ने माना कि न्यायालय का प्राथमिक कार्य विवादों का निपटारा करना है, जबकि यह माना कि एक वैधानिक संविधान की अनुसूची VII सूची III प्रविष्टि 11-ए के अर्थ के भीतर एक राजस्व न्यायालय का गठन करता है।"

केनरा बैंक बनाम नूनिहाल पावर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड[31] के मामले में अपने पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:[14]

> "**50.** केनरा बैंक बनाम नूनिहाल पावर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 98, पैरा 26)
> "26. हमारे विचार में, 'कोर्ट' शब्द को उस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें इसका प्रयोग किसी क़ानून में किया गया है। संदर्भ को देखते हुए, इसे सिविल न्यायालयों की अदालतों और न्यायिक या न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाली अदालतों या कुछ न्यायाधिकरणों के रूप में समझा जा सकता है।"

इसलिए, कानून यह मानता है कि संदर्भ को देखते हुए, इसे सिविल न्यायालयों और न्यायिक या न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले न्यायालयों या कुछ न्यायाधिकरणों के रूप में पढ़ा जा सकता है, जबकि "न्यायालय" शब्द का अर्थ उस संदर्भ में स्पष्ट किया गया है जिसमें इसका प्रयोग किसी क़ानून में किया गया है। "न्यायालय" शब्द का अर्थ और इस प्रकार समझाया गया है:

> "**52**. श्री जयदीप गुप्ता ने श्री भाटी के इस तर्क के उत्तर में कि राष्ट्रीय आयोग एक न्यायालय नहीं है, और इसलिए, प्रतिवादी द्वारा दायर शिकायत पर निर्णय लेने का अधिकार उसके पास नहीं है, उपरोक्त अवलोकन पर दृढ़ता से भरोसा किया है।
>
> **53**. पी. सारथी बनाम एसबीआई (2000) 5 एससीसी 355 में, इस न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 में "न्यायालय" शब्द का अर्थ न्यायालय के रूप में कार्य करने वाले किसी भी प्राधिकरण या न्यायाधिकरण से है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि किहोतो होलोहन बनाम ज़ाचिल्हु 1992 सप्प (2) एससीसी 651 में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने यह माना था कि सभी न्यायाधिकरण न्यायालय नहीं हो सकते हैं, लेकिन सभी न्यायालय न्यायाधिकरण हैं।

[14] 31 1995 सप्प (3) एससीसी 81

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

54. **अब आइए "न्यायालय" शब्द की सामान्य रूप से दी जाने वाली परिभाषा पर नज़र डालें। ऑक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नर्स डिक्शनरी** (8 **वां संस्करण**) **इसे "वह स्थान जहाँ कानूनी मुकदमे होते हैं और जहाँ अपराधों आदि का न्याय किया जाता है"। ऑक्सफोर्ड थिसॉरस ऑफ इंग्लिश (तीसरा संस्करण) निम्नलिखित समानार्थी शब्द देता है "कानून की अदालत, कानूनी अदालत, बेंच, बार, न्याय की अदालत, न्यायपीठ, न्यायाधिकरण, मंच, चांसरी, अंग्रेज़ी कोर्ट्स"। ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी** (10 **वां संस्करण**) **ने अदालत को "मामलों का फैसला करने के लिए एकत्रित व्यक्तियों के एक समूह" के रूप में वर्णित किया है। स्ट्राउड्स ज्यूडिशियल डिक्शनरी** (5 **वां संस्करण**) **में, "कोर्ट" शब्द का वर्णन "एक ऐसी जगह के रूप में किया गया है जहाँ न्याय न्यायिक रूप से किया जाता है और प्राप्त होता है", और आगे कहा गया है "लेकिन ऐसे मामले में एक न्यायिक कार्य शामिल होता है जिसे सर्टिफिकेट पर लाया जा सकता है"।**

55. **केनरा बैंक में इस न्यायालय के उपरोक्त शब्दकोशीय अर्थ और निर्णय और भारत संघ बनाम मद्रास बार एसोसिएशन** (2010) 11 **एससीसी** 1 **में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय की टिप्पणियों से पता चलता है कि "न्यायालय" शब्द को एक निकाय के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसका गठन विवादों के निपटान और उसके समक्ष पक्षकारों के अधिकारों और दायित्वों को तय करने के लिए किया जाता है। "न्यायालय" वे निकाय हैं जो व्यक्तियों के बीच विवादों का समाधान करते हैं। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय ने माना है कि न्यायाधिकरण और आयोग "न्यायालय" की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं। हालांकि, कुछ स्थितियों में, "न्यायालय" शब्द का प्रयोग व्यापक, सामान्य अर्थ में किया जा सकता है न कि संकीर्ण और पांडित्यपूर्ण अर्थ में, और उन मामलों में, इसकी व्याख्या इसी प्रकार की जानी चाहिए।"**

अंततः, यह निष्कर्ष इस प्रकार निकाला:

“57. **उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की दूसरी अनुसूची के नियम** 29 **में "न्यायालय" शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है। हमारा विचार है कि वहां में "न्यायालय" शब्द का प्रयोग उस संकीर्ण अर्थ में नहीं किया गया है जैसा कि हमारे प्रक्रियात्मक कानूनों में किया जाता है। "न्यायालय" शब्द का प्रयोग उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत उत्पन्न विवादों का निपटारा करने वाली संस्था के लिए किया गया है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, जिला मंचों, राज्य मंचों और राष्ट्रीय आयोगों को उपभोक्ताओं के विवादों का निपटारा करने का अधिकार देता है। इन मंचों का अधिकार क्षेत्र, शक्ति और प्रक्रिया, सभी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। यद्यपि ये मंच एक संक्षिप्त प्रक्रिया का पालन करते हुए मामलों का निपटारा करते हैं, फिर भी उनका मुख्य कार्य विवादों का निपटारा करना ही है, जो कि न्यायालय का मुख्य कार्य और उद्देश्य है। हमारा विचार है कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम और वक्फ कानून के प्रयोजनों के लिए, उपभोक्ता मंच "न्यायालय" शब्द के अर्थ में आ सकते हैं।”**

72. **प्यारेलाल बनाम शुभेन्द्र पिलानिया (नाबालिग) प्राकृतिक संरक्षक (पिता) श्री प्रदीप कुमार पिलानिया एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में, राजस्थान काश्तकारी अधिनियम,** 1955 **में निहित प्रावधानों पर विचार करते समय, धारा** 256 **में निहित प्रावधानों के दायरे और दायरे पर विचार किया गया, जो सिविल न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को रोकता है।**

73. **प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत सभी पूर्वोक्त निर्णय सामान्य अर्थ में "वाद" और "न्यायालय" शब्दों के व्यापक अर्थ से संबंधित हैं, लेकिन विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के इस तर्क का समर्थन नहीं करते हैं कि वादों से निपटने और उन पर निर्णय देने वाले सभी न्यायालय या अन्य न्यायाधिकरण अनिवार्य रूप से सिविल न्यायालय या सिविल अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय हैं। इसके विपरीत, पूर्वोक्त निर्णयों में यह माना गया है कि जब कार्यवाही विशेष विधियों के तहत बनाए गए न्यायिक निकायों के समक्ष आयोजित की जाती है, जो उन विशेष विधियों के तहत प्रदान किए गए विवादों के विषय से निपटते हैं, तो उन न्यायिक निकायों के समक्ष कार्यवाही को वाद कहा जा सकता है और कानूनी कल्पना के अनुसार ऐसे न्यायिक निकाय न्यायालय का दर्जा धारण कर सकते हैं, हालाँकि वे विशेष कानूनों के तहत गठित न्यायाधिकरण या विशेष न्यायालयों के रूप में कार्य कर सकते हैं।**

तथापि, हमने ऊपर जो विस्तृत विचार किया है, उसके आधार पर कानून की दृष्टि में सिविल न्यायालय और राजस्व न्यायालय के बीच स्पष्ट अंतर है तथा वे एक नहीं हैं।

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

74. प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा बार में उद्धृत निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, अब हम इस विषय पर कुछ और निर्णयों का उल्लेख करना उचित समझते हैं।

75. हरिनगर शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम श्याम सुंदर झुनझुनवाला एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में, यह घोषित किया गया था कि सभी न्यायाधिकरण न्यायालय नहीं हैं, यद्यपि सभी न्यायालय न्यायाधिकरण हैं। साधारण सिविल न्यायालयों और विशेष अधिनियमों के तहत गठित न्यायाधिकरणों के बीच अंतर इस प्रकार समझाया गया था।

> "(31) जब अधिकारों का उल्लंघन या उन पर अतिक्रमण होता है, तो पीड़ित पक्ष सामान्य सिविल न्यायालयों में जाकर शिकायत दर्ज करा सकता है। ये न्यायालय, जो सरकार के अंग हैं, राज्य की न्यायिक शक्ति से संपन्न हैं, और उनका अधिकार संविधान या उन्हें गठित करने वाले विधानमंडल के किसी अधिनियम से प्राप्त होता है। उनकी संख्या सामान्यतः निश्चित होती है और वे सामान्यतः स्थायी होते हैं, और अपने अधिकार क्षेत्र में किसी भी मुकदमे या मामले की सुनवाई कर सकते हैं। उनकी संख्या बढ़ाई या घटाई जा सकती है, लेकिन वे लगभग हमेशा स्थायी होते हैं और "सिविल न्यायालय" के संक्षिप्त नाम से जाने जाते हैं। इस प्रकार, इसमें कोई संदेह नहीं है कि केंद्र सरकार इस श्रेणी में नहीं आती है।
>
> (32) समाज के विकास और आधुनिक जीवन की समस्याओं के साथ, बड़ी संख्या में प्रशासनिक न्यायाधिकरण अस्तित्व में आए हैं। इन न्यायाधिकरणों के पास मूल्यवान अधिकारों पर निर्णय देने का कानूनी अधिकार है; वे न्यायिक तरीके से और शपथ पर साक्ष्य के आधार पर भी कार्य करते हैं, लेकिन वे सामान्य सिविल न्यायालयों का हिस्सा नहीं हैं। वे राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग साझा करते हैं, लेकिन उन्हें कुछ प्रशासनिक नीति को लागू करने या कुछ प्रशासनिक कानून से उत्पन्न विवादों का निर्धारण करने के लिए अस्तित्व में लाया जाता है। वे न्यायालयों के समान हैं, लेकिन न्यायालय नहीं हैं। जब संविधान अनुच्छेद 136, 227 या 228 में या अनुच्छेद 233 से 237 में या सूचियों में "न्यायालय" की बात करता है, तो यह सिविल न्यायालयों पर विचार करता है, लेकिन ऐसे न्यायालयों के अलावा अन्य न्यायाधिकरणों पर नहीं। अनुच्छेद 136 और 227 में दोनों अभिव्यक्तियों का उपयोग करने का यही कारण है।
>
> "न्यायालय" से तात्पर्य दीवानी न्यायालयों से है और "न्यायाधिकरणों" से तात्पर्य उन निकायों से है जिनकी नियुक्ति कुछ विशेष कानूनों के तहत उत्पन्न विवादों का निपटारा करने के लिए की जाती है। राज्य की शक्तियों में ऐसे विवादों का निपटारा करने की शक्ति भी शामिल है। यह निस्संदेह राज्य की विशेषताओं में से एक है, और इसे राज्य की न्यायिक शक्ति कहा जा सकता है। इस शक्ति के प्रयोग में, एक स्पष्ट विभाजन स्पष्ट दिखाई देता है। मोटे तौर पर, कुछ विशेष मामले न्यायाधिकरणों के समक्ष जाते हैं, और शेष मामले सामान्य दीवानी न्यायालयों के समक्ष जाते हैं। उनकी प्रक्रियाएँ भिन्न हो सकती हैं, लेकिन उनके कार्य अनिवार्य रूप से भिन्न नहीं हैं। उन्हें अलग करने वाली बात कभी भी सफलतापूर्वक स्थापित नहीं की जा सकी है। लॉर्ड स्टैम्प ने कहा था कि वास्तविक अंतर यह है कि न्यायालयों में "आभा का भाव" होता है। लेकिन यह उम्र और परंपरा का मामला है और इसका कोई सार नहीं है। हाल के वर्षों में, कई न्यायाधिकरणों ने खुद को इतनी अच्छी तरह और इतनी आभा के साथ बरी किया है कि यह कसौटी अपर्याप्त लगती है। लॉर्ड सैंकी, एल सी ने शेल कंपनी ऑफ ऑस्ट्रेलिया बनाम फेडरल कमिश्नर ऑफ टैक्सेशन, (1931) ए सी 275 (296) में कहा:
>
> "अधिकारियों ने स्पष्ट रूप से दिखाया है कि ऐसे न्यायाधिकरण हैं जिनमें न्यायालय के कई ढाँचे होते हैं, फिर भी, न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने के सख्त अर्थ में न्यायालय नहीं हैं... इस संबंध में इस विषय पर कुछ नकारात्मक प्रस्तावों को गिनना उपयोगी हो सकता है 1. एक न्यायाधिकरण आवश्यक रूप से इस सख्त अर्थ में न्यायालय नहीं है क्योंकि यह अंतिम निर्णय देता है। 2. न ही इसलिए कि यह शपथ पर गवाहों को सुनता है। 3. न ही इसलिए कि दो या अधिक प्रतिद्वंद्वी पक्ष इसके समक्ष उपस्थित होते हैं जिनके बीच इसे निर्णय करना होता है। 4. न ही इसलिए कि यह ऐसे निर्णय देता है जो विषयों के अधिकारों को प्रभावित करते हैं। 5. न ही इसलिए कि न्यायालय में अपील की जा सकती है। 6. न ही इसलिए कि यह एक ऐसा निकाय है जिसके पास कोई मामला किसी अन्य निकाय द्वारा भेजा जाता है। देखें रेक्स बनाम इलेक्ट्रिसिटी कमिश्नर्स, (1924) 1 के बी 171.

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

> (33) मेरी राय में, सख्त अर्थों में न्यायालय एक न्यायाधिकरण है जो राज्य द्वारा अपने संविधान के तहत राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने के लिए बनाए गए सिविल न्यायालयों के सामान्य पदानुक्रम का एक हिस्सा है। ये न्यायालय राज्य के सभी न्यायिक कार्य करते हैं, सिवाय उन कार्यों के जो कानून द्वारा उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे गए हैं। ध्यान रहे, "न्यायिक" शब्द अपने आप में दो अर्थ रखता है। रॉयल एक्वेरियम एंड समर एंड विंटर गार्डन सोसाइटी बनाम पार्किंसन, (1892) 1 क्यूबी 431 (452) में लॉर्ड एशर एमआर ने इन शब्दों में इन्हें सटीक ढंग से व्यक्त किया है
>
> ""न्यायिक" शब्द के दो अर्थ हैं। इसका तात्पर्य न्यायाधिकरण या न्यायालय में न्यायाधीशों द्वारा किए जाने वाले कर्तव्यों के निर्वहन से हो सकता है, या प्रशासनिक कर्तव्यों से हो सकता है, जिन्हें न्यायालय में निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन जिनके संबंध में न्यायिक मन का प्रयोग करना आवश्यक है- अर्थात, विचाराधीन मामले के संबंध में क्या उचित और न्यायसंगत है, यह निर्धारित करने के लिए एक मन।"
>
> किसी अधिकारी को दूसरे अर्थ में अपने समक्ष आने वाले मामले का निर्णय "न्यायिक रूप से" करने की आवश्यकता होती है, इससे वह न्यायालय या न्यायाधिकरण नहीं बन जाता, क्योंकि इससे केवल यह स्थापित होता है कि वह अपने कार्यों के मार्गदर्शन के लिए न्यायिक मन का पालन कर रहा है, तथा पक्षपात या स्वार्थ से मुक्त है।"

76. जसवंत शुगर मिल्स लिमिटेड, मेरठ बनाम लक्ष्मीचंद एवं अन्य[32] के मामले में यह स्पष्ट किया गया था कि किसी प्राधिकरण को क़ानून द्वारा न्यायिक रूप से कार्य करने की जो शक्ति प्रदान की गई है, वह आवश्यक रूप से उस प्राधिकरण को राज्य की न्यायिक शक्ति से सुसज्जित नहीं करती है और यहाँ तक कि प्रशासनिक और कार्यपालक प्राधिकारियों को भी अक्सर अपने संविधान के आधार पर नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रश्नों के संबंध में न्यायिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता होती है। यह इस प्रकार देखा गया:[15]

> "(19) किसी प्राधिकारी पर क़ानून द्वारा न्यायिक रूप से कार्य करने का जो कर्तव्य आरोपित किया गया है, वह आवश्यक रूप से उस प्राधिकारी को राज्य की न्यायिक शक्ति से सुसज्जित नहीं करता। यहाँ तक कि प्रशासनिक या कार्यपालक प्राधिकारियों को भी अक्सर अपने संविधान के आधार पर नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रश्नों के निर्धारण में न्यायिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता होती है। राजस्व बोर्ड, सीमा शुल्क प्राधिकारी, मोटर वाहन प्राधिकारी, आयकर और बिक्री कर अधिकारी, प्रथम दृष्टया ऐसे प्रशासनिक प्राधिकारियों के उदाहरण हैं, जो न्यायिक रूप से कार्य करने के कर्तव्य के अधीन होते हुए भी, या तो उन्हें बनाने वाले क़ानूनों के स्पष्ट प्रावधानों द्वारा या उनके अंतर्गत बनाए गए नियमों द्वारा या क़ानूनों या उन्हें प्रदत्त शक्तियों के निहितार्थ द्वारा, राज्य की न्यायिक शक्ति के प्रतिनिधि नहीं हैं। उनका प्राथमिक कार्य प्रशासनिक है, न्यायिक नहीं। यह तय करने में कि नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले मामलों से निपटने के लिए न्यायिक रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक किसी प्राधिकारी को एक न्यायाधिकरण माना जा सकता है या नहीं, यद्यपि न्यायालय नहीं, मुख्य परीक्षण "न्यायालय के ढाँचे का अधिग्रहण है—जैसे कि पक्षों द्वारा शुरू किए गए मामले में मामले का निर्धारण करने का अधिकार, सार्वजनिक, गवाहों को उपस्थित होने के लिए बाध्य करने और शपथ पर उनसे पूछताछ करने की शक्ति, साक्ष्य के मूलभूत नियमों का पालन करने का कर्तव्य (हालाँकि साक्ष्य अधिनियम के सख्त नियम नहीं), कारावास, जुर्माना, हर्जाना या अनिर्णय या निषेधात्मक आदेशों के माध्यम से दंड लागू करने का प्रावधान ताकि उनके आदेशों का पालन सुनिश्चित किया जा सके। यह सूची उदाहरणात्मक है, कुछ, हालाँकि ज़रूरी नहीं कि सभी, ऐसे ढाँचे सामान्यतः उस प्राधिकारी को "न्यायाधिकरण" बना देंगे जिसका न्यायिक रूप से कार्य करने का कर्तव्य है।

77. उपर्युक्त कारणों से, हमारा दृढ़ मत है कि राजस्व न्यायालय सिविल न्यायालय नहीं हैं, न ही इन्हें सिविल अधिकारिता वाले न्यायालय कहा जा सकता है, बल्कि ये केवल विशेष न्यायालय हैं या कहें कि एक वैधानिक न्यायाधिकरण हैं, जिन्हें राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 और राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 के तहत उपबंधित मामलों से निपटने के लिए न्यायिक रूप से कार्य करने का अधिकार है।

---

[15] 32 एआईआर 1963 एससी 677

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)

78. महेंद्र कुमार जैन बनाम अपीलीय विक्रय न्यायाधिकरण, अजमेर (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर अत्यधिक भरोसा किया गया है। उस मामले में विचारणीय प्रश्न यह था कि क्या विक्रय न्यायाधिकरण और अपीलीय विक्रय न्यायाधिकरण द्वारा पारित न्यायिक आदेश पर केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्तियों का आह्वान करके प्रश्न उठाया जा सकता है और क्या यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट अधिकारिता के अधीन नहीं है। यह मानने का व्यावहारिक कारण कि इनमें न्यायालय के सभी गुण हैं और यह सिविल न्यायालय द्वारा किए जाने वाले न्यायिक कार्यों के समान है, यह था कि कानून के अनुसार ऐसे न्यायाधिकरण की अध्यक्षता क्रमशः सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग) और जिला न्यायाधीश के पद के नामित अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए। यह इस प्रकार कहा गया:

> **"71.** यह हमें विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्क पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है कि 2001 के अधिनियम की धारा 13 और 19 के तहत गठित विक्रय न्यायाधिकरण और अपीलीय विक्रय न्यायाधिकरण को क्रमशः सिविल जज (सीनियर डिवीजन) और जिला न्यायाधीश कैडर के पद के नामित अधिकारी द्वारा अध्यक्षता करने का आदेश दिया गया है और इस प्रकार, वे किसी भी पूर्व मौजूदा न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से प्राप्त नहीं होने के कारण, उन्हें सिविल न्यायालय नहीं माना जा सकता है।"

79. उपर्युक्त निर्णय इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करता कि जब न्यायाधिकरणों की अध्यक्षता न्यायिक अधिकारियों के बजाय प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा की जाती है, तब भी वह एक सिविल न्यायालय होगा। इसके अतिरिक्त, यह मामला राजस्व कानूनों के अंतर्गत विशेष न्यायालयों के रूप में गठित राजस्व न्यायालयों के गठन, अधिकार क्षेत्र, शक्तियों और कार्यों से संबंधित नहीं था।

80. विधि के अनुसार, भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम नंदिनी जे. शाह एवं अन्य (सुप्रा) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत महेंद्र कुमार जैन बनाम अपीलीय विक्रय न्यायाधिकरण, अजमेर (सुप्रा) मामले में निर्णय का आधार था। उस मामले में, उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट अपील की पोषणीयता के संबंध में, सार्वजनिक परिसर (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के अंतर्गत गठित अपीलीय अधिकारी के निर्णय की सत्यता पर विचारणीय मुद्दा उठा। अधिनियम की योजना के अनुसार, अपीलीय अधिकारी का जिले का न्यायिक अधिकारी (जिला न्यायाधीश या जिला न्यायाधीश द्वारा नामित न्यायिक अधिकारी) होना आवश्यक था, जिसके पास आवश्यक योग्यताएँ हों। यह माना गया कि उक्त अपीलीय अधिकारी, उपरोक्त अधिनियम के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, किसी व्यक्ति के रूप में कार्य नहीं करता, बल्कि जिले में एक पूर्व विद्यमान न्यायिक प्राधिकारी के रूप में अपनी क्षमता का प्रयोग करता है और अधिकारी द्वारा पारित आदेश अधीनस्थ न्यायालय का आदेश है, इसलिए, उसे चुनौती देने की कार्यवाही सामान्यतः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत होनी चाहिए, न कि अनुच्छेद 226 के तहत। इस आधार पर, एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट अपील को विचारणीय नहीं माना गया।

81. अंतिम निष्कर्ष में, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि राजस्व न्यायालय सिविल न्यायालय नहीं हैं और इसलिए, राजस्व मंडल, अपीलीय राजस्व न्यायालय या पुनरीक्षण या संदर्भ प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए न्यायाधिकरण के रूप में, सिविल न्यायालय या सिविल अधिकार क्षेत्र वाला न्यायालय नहीं है। इसलिए, राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में दिया गया निर्णय राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेशों के मामले में लागू नहीं होता है और इसलिए, हम यह मानने में असमर्थ हैं कि राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेशों को उच्च न्यायालय में केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में चुनौती दी जा सकती है, न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत।

82. उपर्युक्त के मद्देनजर, हम कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए विचारों से सम्मानपूर्वक असहमत हैं, जिनमें राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेशों को केवल अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के अधीन माना गया है, न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत।

83. यह एक अलग बात होगी कि किसी दिए गए मामले में, राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ भी, केवल पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार लागू किया गया है और पीड़ित पक्ष ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार लागू नहीं करने का विकल्प चुना है। ऐसे मामले में, तथ्यों के आधार पर, कोई यह तर्क दे सकता

है कि आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के तहत उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया था और इस कारण से, राजस्थान उच्च न्यायालय नियमों के नियम 134 के तहत रिट-अपील का उपाय पोषणीय नहीं होगा। हालांकि, केवल इसलिए कि राजस्व मंडल द्वारा आदेश पारित किया गया है, जहां एक पीड़ित पक्ष ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत याचिका दायर करके उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और जहां मामले के तथ्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 दोनों के तहत याचिका दायर करने का औचित्य साबित करते हैं, रिट अपील पोषणीय होगी।

84. इस आधार पर न्यायालयीन अपीलों की पोषणीयता पर आपत्ति, तदनुसार, निरस्त की जाती है क्योंकि ये सभी अपीलें, राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध, चाहे वे अपीलीय राजस्व न्यायालय के रूप में हों या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत दायर याचिकाओं में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेशों से उत्पन्न हुई हैं। ये अपीलें विधिक रूप से पोषणीय मानी जाती हैं।

85. इन सभी अपीलों को उनके गुणदोष के आधार पर अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाए।

86. इस आदेश की एक प्रति प्रत्येक संबद्ध अपील के अभिलेखों में रखी जाए।

(शुभा मेहता), जे (मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव), सीजे

मनोज नारवानी /....

"अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाशा में कर सकेगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी अधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निशपादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।"

Tarun Mehra
Advocate

(29/05/2025 को 03:08:29 बजे डाउनलोड किया गया)